अग्निशिखा

अखिल भारतीय पत्रिका
मार्च २०१७

धन का मूल्य

अग्निशिखा मार्च २०१७ वर्ष ४७, अंक ८, पूर्णांक ५५९

विषय-सूची

सन्देश/सम्पादकीय ३

धन का मूल्य
(श्रीमाँ के वचनों का संकलन)

धन का प्रभाव ५
धन की शक्ति के साथ व्यवहार करना १३
धन और गुह्य सत्य २१
धन और भागवत कार्य ४०

'पुरोधा'

दैनन्दिनी ४८
अधन्ना कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' ५०
मेरी जिन्दगी महक उठी वन्दना ५१
पुस्तक-परिचय ५६
फ़ॉर्म ४ ५८

अग्निशिखा का वार्षिक शुल्क :
एक वर्ष–१८०रु.; तीन वर्ष–५२०रु.; पांच वर्ष–८६०रु.।
पत्रिका हर महीने की ४ तारीख को प्रेषित की जाती है।

श्रीअरविन्द सोसायटी की मासिक पत्रिका
Website : www.aurosociety.org

सम्पादिका : वन्दना
प्रकाशक : प्रदीप नारंग, श्रीअरविन्द सोसायटी, पॉण्डिचेरी—६०५००२
मुद्रक : स्वाधीन चैटर्जी, श्रीअरविन्द आश्रम प्रेस, पॉण्डिचेरी

सन्देश

धन के लिए सच्ची वृत्ति यह है : धन एक शक्ति है जो धरती पर एक कार्य करने के लिए है, वह धरती को दिव्य शक्तियों के ग्रहण करने और उनकी अभिव्यक्ति हेतु तैयार करने के आवश्यक कार्य के लिए है। अतः यह, अर्थात्, उपयोग करने की शक्ति उन हाथों में होनी चाहिये जिन्हें सबसे अधिक स्पष्ट, सबसे अधिक व्यापक और सबसे अधिक सत्य दृष्टि प्राप्त हो।

—श्रीमाँ

सम्पादकीय : धन ऐसी शक्तियों में से एक है जिसकी मानव-सभ्यता पर जबरदस्त पकड़ है। धन-सम्पदा के पीछे एक ऐसा सामर्थ्य होता है जिसे भागवत सेवा के लिए तथा धरती पर भागवत जीवन की उपलब्धि के लिए काम में लाया जा सकता है। जीवन के अन्य सभी पहलुओं की तरह श्रीअरविन्द तथा श्रीमाँ ने धन के बारे में कई गभीर और गुह्य सत्यों को उजागर किया है; उदाहरण के लिए, धन किन साधनों को प्रदान कर सकता है, कैसा प्रभाव डालता है यह, इसके पीछे कौन-कौन सी शक्तियाँ काम करती हैं, और सबसे बढ़ कर यह कि यौगिक तरीके से धन-दौलत के प्रति हमें कैसी मनोवृत्ति अपनानी चाहिये।

इस अंक में हम धन के सत्य के बारे में मुख्यतः श्रीमाँ के वचनों का संकलन दे रहे हैं।

समस्त धन-सम्पदा भगवान् की है, भगवान् उसे जीवित प्राणियों को उधार देते हैं और स्वभावतः उसे उन्हें भगवान् के पास लौटा देना चाहिये।

*

चैत्य प्रभाव के अधीन धन-सम्पत्ति : अपने सच्चे स्वामी, भगवान् के पास लौटने के लिए तैयार धन-सम्पदा।

*

एक दिन आयेगा जब इस धरती की समस्त धन-सम्पदा, अन्ततः भागवत विरोधी शक्तियों की दासता से मुक्त होकर अपने-आपको सहज और पूर्ण रूप से धरती पर भगवान् के 'कार्य' के लिए अर्पित कर देगी।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १५, पृ. ५३-५४

धन का प्रभाव

राजनीति और धन सबसे अधिक प्रतिरोध करते हैं

दो बिन्दु हैं जो जबरदस्त प्रतिरोध करते हैं—एक तो वह सब जो राजनीति से सम्बन्ध रखता है और दूसरा वह सब जो धन से सम्बन्ध रखता है। ये दो स्थल ऐसे हैं जिनके बारे में मनुष्य की मनोवृत्ति को बदलना सबसे अधिक कठिन है। सिद्धान्त रूप में हमने कहा है कि हमारा राजनीति से कोई सम्बन्ध नहीं है, और यह सच है कि वर्तमान राजनीति से हमारा कोई सम्बन्ध नहीं है। पर यह भी एकदम स्पष्ट है कि यदि राजनीति को इसकी सच्ची भावना में लिया जाये, अर्थात्, इसे मानव-समुदायों के संगठन, शासन के ब्योरे, सामूहिक जीवन की व्यवस्था और दूसरे समुदायों—अर्थात्, दूसरे राष्ट्रों व देशों—के साथ सम्बन्ध के रूप में लिया जाये तो अवश्य ही इसे अतिमानसिक रूपान्तर के अन्तर्गत होना होगा, क्योंकि जब तक राष्ट्रीय जीवन और राष्ट्रों का पारस्परिक सम्बन्ध वैसा ही बना रहेगा जैसा अब है तब तक पृथ्वी पर अतिमानसिक जीवन बिताना बिलकुल असम्भव है। इसलिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि यह परिवर्तित हो, यह बहुत जरूरी है कि इस पर भी ध्यान दिया जाये।

जहाँ तक वित्त-व्यवस्था का प्रश्न है, अर्थात्, विनिमय और उत्पादन का ऐसा साधन प्राप्त करना जो सरल हो—"सरल", कम-से-कम जो सरल होना चाहिये, आदिमकाल की उस विनिमय पद्धति से भी अधिक सरल जब एक चीज देकर दूसरी चीज प्राप्त की जाती थी—ऐसा साधन जो तत्त्वतः सारी पृथ्वी के लिए हो, सार्वभौम एवं सर्वत्रोपयोगी हो; जीवन को सरल बनाने के लिए यह चीज बहुत अनिवार्य है। परन्तु मानव-प्रकृति के कारण जो चीज अब हो रही है वह ठीक इससे उलटी है! स्थिति ऐसी है कि वह प्रायः असह्य-सी हो उठी है। दूसरे देशों के साथ थोड़ा भी सम्बन्ध रखना असम्भव-सा हो गया है, और विनिमय का वह साधन, जिसे जीवन को सरल बनाने वाला होना चाहिये था, इतना जटिल बन गया है कि जल्दी ही हम गतिरोध की विकट स्थिति में पहुँच जायेंगे—हम उस अवस्था के बहुत, बहुत नजदीक हैं जब हम कुछ भी न कर सकेंगे, सब बातों में बँध जायेंगे।...

हाँ तो, ये दो स्थल हैं जहाँ सबसे अधिक प्रतिरोध है। मानव-चेतना में यही चीज सबसे अधिक अज्ञान और निश्चेतना की, और मैं कह सकती हूँ कि काफी व्यापक रूप से दुर्भावना की शक्तियों के अधीन है। यही समस्त प्रगति और सत्य की ओर बढ़ने में सबसे अधिक रुकावट डालती है। दुर्भाग्यवश प्रत्येक मनुष्य में भी यही स्थल है जो दुराग्रही होता है एवं संकीर्ण रूप में मूर्खतापूर्ण बना रहता है और जो उसके सामान्य अभ्यास की बात नहीं, उस सबको समझने से इन्कार करता है। तो, इन चीजों को लेकर इन्हें रूपान्तरित करने की इच्छा करना सचमुच एक वीरतापूर्ण कार्य है। हाँ, हम इसके लिए भी प्रयत्न कर रहे हैं, और जब तक यह हो नहीं जाता तब तक पृथ्वी की अवस्थाओं को बदलना असम्भव है।

आवश्यक छलाँग

आर्थिक और सामाजिक अवस्थाओं को बदलना राजनीतिक और वित्तीय अवस्थाओं को बदलने की अपेक्षा—अपेक्षया ही—ज्यादा आसान है। आर्थिक और सामाजिक दृष्टि से कुछ ऐसे व्यापक और सार्वभौम विचार हैं जिन्हें मानव-मन समझता है। कुछ ऐसी उदार और विशाल भावनाएँ और सामूहिक संगठन की बातें हैं जो एकदम निरर्थक और अव्यवहार्य प्रतीत नहीं होतीं; परन्तु ज्यों ही तुम दूसरी दो बातों को छेड़ते हो, जो अत्यधिक महत्त्व की हैं, विशेषकर राजनीति का प्रश्न, तो बात बिलकुल और हो जाती है...। कारण, हम ऐसे जीवन की कल्पना कर सकते हैं जो वित्त-सम्बन्धी सभी जटिलताओं से मुक्त हो—यद्यपि वह होगी एक विशुद्ध दरिद्रता ही, इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं। वित्तीय सम्भावनाओं और प्रक्रियाओं में सम्भावनाओं की पर्याप्त सम्पदा निहित है, क्योंकि यदि उनका उचित ढंग और सच्ची वृत्ति के साथ उपयोग किया जाये तो वे मनुष्यों के समस्त सम्बन्धों और कार्यों को बहुत हद तक सरल बना देंगी और जीवन की जटिलताओं को कम कर देंगी जो किन्हीं दूसरी परिस्थितियों में करना बहुत कठिन है। लेकिन मैं नहीं जानती कि किस कारण से—सिवाय इसके कि बुरे-से-बुरा सामान्यतः अच्छे-से-अच्छे के पहले आता है—सरल रास्ता लेने के बजाय मनुष्यों ने इतना जटिल रास्ता पकड़ा है कि बावजूद वायुयानों के, जो तुम्हें संसार के एक कोने से दूसरे कोने तक दो ही दिनों में पहुँचा देते हैं, बावजूद

सारे आधुनिक आविष्कारों के, जो जीवन को "छोटा" बनाने की कोशिश करते हैं, इतना "नजदीक" कि अब दुनिया भर की सैर के लिए ८० दिन नहीं लगते, तुम कुछ ही दिन में सैर कर आते हो, बावजूद इस सबके, विदेशी मुद्रा के विनिमय की जटिलता, उदाहरणार्थ, इतनी अधिक है कि बहुत-से लोग बाहर नहीं जा पाते—मेरा मतलब है कि अपने देश से बाहर नहीं जा पाते—क्योंकि उनके पास दूसरे देश में जाने के लिए साधन नहीं हैं और यदि वे दूसरे देश में रहने के लिए अपेक्षित धन की माँग करते हैं तो उनसे कहा जाता है, "क्या तुम्हारा वहाँ जाना बहुत जरूरी है? क्या तुम कुछ प्रतीक्षा नहीं कर सकते, इस समय हमारे लिए प्रबन्ध करना बहुत कठिन है...।" मैं मज़ाक नहीं कर रही, गम्भीरता से कह रही हूँ, यही हो रहा है। इसका मतलब है कि जिस स्थान पर हमने जन्म लिया है उसी में हम अधिकाधिक बन्दी होते जा रहे हैं, जब कि विज्ञान के सारे अनुसन्धान देशों को इतना निकट लाते जा रहे हैं कि मनुष्य सारे विश्व का हो सकता है, या कम-से-कम, सारी पृथ्वी का तो हो ही सकता है।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ९, पृ. १८५-८७

सचमुच धन का अर्थ धन कमाना नहीं है। उसका अर्थ है, नयी सृष्टि के आविर्भाव के लिए धरती को तैयार करना।

*

धन है एक शक्ति और इसे वैयक्तिक सम्पत्ति नहीं होना चाहिये, जैसे हवा, पानी या आग किसी व्यक्ति-विशेष के नहीं होते।

आरम्भ करने के लिए, उत्तराधिकार की भावना लुप्त हो जानी चाहिये।...

धन की शक्ति एक ऐसी प्राणिक शक्ति का मूर्त रूप है जो धरती पर कार्य करने की सबसे बड़ी शक्ति बन गयी है: आकर्षण, प्राप्ति तथा उपयोग करने की शक्ति।

दूसरी शक्तियों की तरह इसे भी भागवत सेवा में लगाना चाहिये।

१९५८ *—श्रीमाँ*

धन सामूहिक सम्पत्ति है

धन किसी एक की सम्पत्ति नहीं है : धन सामूहिक सम्पत्ति है, जिनके अन्दर सर्वांगीण, व्यापक और वैश्व दृष्टि हो, केवल वे ही उसका उपयोग करने के अधिकारी हैं। और साथ ही मैं यह भी जोड़ दूँ कि वह दृष्टि न केवल सर्वांगीण और व्यापक हो बल्कि हो तत्त्वतः **सच्ची** भी, यानी, तुम इसमें भेद कर सको कि वैश्व प्रगति के लिए उसका उचित उपयोग हो रहा है या किसी की मनमौजी सनक के लिए उसका व्यय हो रहा है। लेकिन ये सब ब्योरे की बातें हैं, क्योंकि भूलें—यहाँ तक कि एक दृष्टि से धन का दुरुपयोग भी—सामान्य प्रगति के लिए सहायक बन जाता है : इन्हें उलटी तरह से सीखा हुआ पाठ कहा जा सकता है।

मुझे अभी तक याद है कि तेओं कहा करते थे, (तेओं लोकोपकार के एकदम विरुद्ध थे) "लोकोपकार मानव-दुर्दशा को स्थायी बना देता है, क्योंकि मानव-दुर्दशा के बिना वह अपना अस्तित्व खो बैठेगा!" और जानते हो, उस महान् लोकोपकारी को... क्या नाम था उसका? *माज़ारैं* के समय का, जिसने "Little Sisters of Charity" नामक गरीब महिलाओं के लिए एक संस्था खोली थी?

वैंसा द पॉल।

हाँ। एक बार *माज़ारैं* ने उससे कहा था, "जब से तुमने गरीबों की देखभाल करनी शुरू की, उसके पहले इतने गरीब नहीं थे!"

१० अप्रैल १९६८ एक शिष्य के साथ श्रीमाँ के वार्तालाप से

ओरोवील में धन के बिना व्यापार करने का परीक्षण[१]

... किसी तरह का धन नहीं था : शहर की चहारदीवारी में धन का उपयोग नहीं हो रहा था; शहर के विभिन्न प्रवेश-द्वारों पर बैंक थे, काउण्टर थे जहाँ जाकर लोग अपने पैसे जमा कर देते और उसके बदले में उन्हें टिकट दिये जा रहे थे जिससे वे रहना-खाना इत्यादि कर रहे थे। लेकिन धन नहीं था। और अन्दर भी, ऐसा बिलकुल कुछ न था। किसी के भी पास कोई धन न था—और ये टिकट भी सिर्फ मेहमानों के लिए थे, जिन्हें *परमिट* के साथ ही प्रवेश मिलता था। वह अद्‌भुत व्यवस्था थी... कोई धन नहीं, मैं धन नहीं चाहती थी!

२३ जून १९६५ एक शिष्य के साथ श्रीमाँ के वार्तालाप से

१. श्रीमाँ ओरोवील के बारे में अपने एक अन्तर्दर्शन की बात कर रही हैं।

सामूहिक हिस्सेदारी, लेकिन कोई 'टैक्स' नहीं

मधुर माँ, यहाँ आपका एक वाक्य है—
"वे सभी जो वहाँ (ओरोवील में) रहेंगे, वहाँ के जीवन और विकास में हिस्सा लेंगे..."

... हाँ, हर एक अपनी क्षमताओं और साधनों के अनुसार भाग लेगा, यान्त्रिक रूप से नहीं, कि "प्रत्येक को इतना कार्य करना ही होगा।" यही मुख्य बात है। वह जीवन्त और सच्ची चीज होनी चाहिये, यान्त्रिक नहीं, और "अपनी क्षमताओं के अनुसार," अर्थात्, जिनके पास भौतिक साधन हैं, मान लो, किसी की फ़ैक्टरी है तो वह अपने उत्पादन के हिसाब से सामान भी देगा, वहाँ किसी पर भी वह नियम नहीं लागू होगा कि तुम्हें इतनी मात्रा में काम करना ही होगा, इत्यादि।...

आपने कहा—"वहाँ वैसे 'टैक्स' नहीं होंगे, लेकिन सामूहिक भलाई के लिए हर एक कार्य, वस्तु या धन के माध्यम से अपना योगदान अवश्य देगा।"

तो बात स्पष्ट है : किसी भी तरह का कोई कर नहीं होगा, लेकिन सामूहिक भलाई के लिए प्रत्येक को अपने काम, वस्तु या धन के माध्यम से योगदान जरूर देना होगा। जिनके पास धन के सिवाय और कुछ नहीं है, वे धन देंगे। लेकिन सच्ची बात तो यह है कि वह "कार्य" आन्तरिक कार्य भी हो सकता है (लेकिन हम यह नहीं कह सकते क्योंकि लोग बहुत निष्कपट नहीं होते)। कार्य गुह्य हो सकता है, पूरी तरह से आन्तरिक, लेकिन निस्सन्देह, उसके आन्तरिक होने के लिए व्यक्ति को पूरा-पक्का निष्कपट और सच्चा होना होगा, बिना किसी दिखावे के उसे यथाशक्ति कार्य करना होगा। लेकिन यह जरूरी नहीं है कि वह भौतिक कार्य ही हो।

३० दिसम्बर १९६७ एक शिष्य के साथ श्रीमाँ के वार्तालाप से

एक नयी व्यवस्था की नींव

कठिनाई है, वस्तुओं के मूल्य की सराहना करना, समझ रहे हो, यह विस्तृत दृष्टि की माँग करता है। धन-दौलत की सुविधा आज यान्त्रिक बन गयी है... लेकिन हम जिस नयी व्यवस्था की बात कर रहे हैं उसे यान्त्रिक नहीं बनाया जा सकता... उदाहरण के लिए, विचार यह है कि ओरोवील-वासियों के पास धन बिलकुल नहीं होगा—धन का कोई आदान-प्रदान नहीं होगा—लेकिन भोजन के लिए, हर एक को खाने का अधिकार है न, *(हँसी)*, और हमारा विचार—प्रत्येक की रुचि और आवश्यकता के अनुसार—हर सम्भव प्रकार का भोजन रखने का था (उदाहरणार्थ, आमिष व निरामिष भोजन, पथ्य-आहार इत्यादि), और जो वहाँ भोजन करना चाहेंगे उन्हें उसके बदले में कुछ करना होगा—कोई काम, या... व्यावहारिक स्तर पर इसे क्रिया में लाना इतना आसान नहीं है... देखो, हमने ओरोवील-नगरी के चारों तरफ बहुत-सारी जमीन लेने की योजना बनायी है ताकि नगरवासियों के लिए बड़े पैमाने पर खेती-बाड़ी की जा सके। लेकिन पैदावार के लिए हमें धन की जरूरत है, या फिर चीजों की... तो देख रहे हो न, मुझे ब्योरों की कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा, और यह आसान नहीं है!

कुछ हैं जो इसे समझ सकते हैं।

देखो, विचार यह है कि ओरोवील में कोई चुंगी न होगी, न कर होंगे, न ही किसी भी ओरोवीलवासी के नाम कोई सम्पत्ति या जायदाद होगी। कागज पर लिखी हुई ये सारी बातें बड़ी बढ़िया लगती हैं, लेकिन जब इन्हें क्रियान्वित करना हो...

वही समान समस्या हमेशा सामने आ खड़ी होती है : जिन लोगों पर जिम्मेवारी सौंपी जाये उन्हें... उनमें एक विश्वव्यापी चेतना होनी चाहिये, अन्यथा... जहाँ कहीं वैयक्तिक चेतना आ जाये, इसका अर्थ है कि व्यक्ति शासन करने के योग्य नहीं है—हमारे सामने सरकारों के भयंकर उदाहरण मौजूद हैं!

२५ मार्च १९७० एक शिष्य के साथ श्रीमाँ के वार्तालाप से

जिन तीन चीजों से बचना है

चीजें कितनी आसान और आरामदेह बन जायें अगर अहंकार की ये सारी प्रतिक्रियाएँ न हों : महत्त्वाकांक्षा की प्रतिक्रियाएँ, आत्म-सम्मान की प्रतिक्रियाएँ—छल-कपट का तो मैं जिक्र ही नहीं कर रही : जब वह आ जाये तो... (लुका-छिपी की मुद्रा)। हाँ, तो तीन चीजें हैं—महत्त्वाकांक्षा, जिसमें दिखावा हो, अधिकार की भावना हो; आत्म-सम्मान या दर्प (तुम्हारे सच्चे मूल्य की सराहना न करने पर जब तुम्हें चोट पहुँचे तब तुम भड़क उठते हो, लड़ाई-झगड़ा, तनाव और संघर्ष शुरू हो जाते हैं); और अन्त में है, धन के लिए प्यास, लोभ-लालच, हथियाने की कामना, अर्थलिप्सा : तुम अवसर का "पूरा-पूरा" लाभ उठाना चाहते हो—"मैं बस फायदा पाना चाहता हूँ, मैं बस लाभ ही लाभ प्राप्त करना चाहता हूँ..." इन तीन चीजों के रहते हुए सब कुछ गड्डमड्ड हो जाता है।

१४ फरवरी १९६८ एक शिष्य के साथ श्रीमाँ के वार्तालाप से

*

"धन का शासन" समाप्त हो रहा है

हम कह सकते हैं कि धन के शासन पर परदा गिर रहा है।

लेकिन, अब तक जो व्यवस्था चली आ रही है और जो आने वाली है (मान लो, सौ साल के अन्दर आये!) इनके बीच का संक्रमण-काल बहुत कठिन है—बहुत ही कठिन है।...

२५ मार्च १९७० *एक शिष्य के साथ श्रीमाँ के वार्तालाप से*

तुम्हें धन की शक्ति से—वह तुम्हें जो साधन प्रदान करती है और उससे तुम जो चीजें प्राप्त करते हो—न वैरागियों की तरह सिकुड़ना चाहिये, न उससे राजसिक आसक्ति रखनी चाहिये और न ही उससे प्राप्त सन्तोषों का दास बन कर उसी के पचड़ों में डूब जाना चाहिये। धन को मात्र एक ऐसी शक्ति के रूप में लो जिसे माँ के लिए फिर से प्राप्त कर उनकी सेवा में अर्पित कर देना है।

समस्त धन भगवान् का है और जो उसे रखते हैं वे उसके 'ट्रस्टी' यानी न्यासी हैं, उसके अधिकारी नहीं। आज वह उनके पास है, कल किसी और के पास हो सकता है। सब कुछ इस पर निर्भर करता है कि जब धन उनके पास होता है तो वे उसे किस भावना के साथ रखते हैं, खर्च करते हैं; किस चेतना से और किस उद्देश्य के लिए उसका उपयोग करते हैं।

CWSA खण्ड ३२, पृ. १० —*श्रीअरविन्द*

धन की शक्ति के साथ व्यवहार करना

धन है सञ्चार के लिए, वह साधन है, लक्ष्य नहीं

धन उसी का है जो उसे खर्च करता है; यह एक निर्द्वन्द्व नियम है। तुम धन का अम्बार लगा लो, लेकिन जब तक तुम उसको खर्च नहीं करते, वह तुम्हारा नहीं है। धन के उपयोग से ही तुम्हें पुण्य, महिमा, हर्ष, खर्च करने का सुख मिलता है!

धन सञ्चार के लिए है। उसकी आवाजाही होनी चाहिये। जो चीज हमेशा बनी रहनी चाहिये वह है—धरती पर जो उत्पादन होता है उसमें निरन्तर वृद्धि, यानी, धरती के उत्पादन में सतत रूप से विस्तार और उस पर बसने वाले प्राणियों के जीवन में निरन्तर सुधार। भौतिक रूप से पार्थिव जीवन में सुधार होता रहे, साथ ही धरती का उत्पादन निरन्तर बढ़ता रहे, फैलता रहे, यह नहीं कि हम बस कागज के इन हास्यास्पद टुकड़ों को जोड़ते रहें या इन जड़-निर्जीव सिक्कों को बटोरते रहें।

धन अधिक धन कमाने के लिए नहीं बना है; उत्पादन में बढ़ोतरी के लिए धन का उपयोग होना चाहिये, पार्थिव जीवन की अवस्थाओं को सुधारने और मानव चेतना के विकास के लिए इसे इस्तेमाल में लाना चाहिये। यही उसका सच्चा उपयोग है। जिसे मैं चेतना में सुधार, चेतना में प्रगति कहती हूँ वह वह सब है जिसे शिक्षा अपने सभी रूपों में हमें प्रदान कर सकती है, शिक्षा का वस्तुतः वह अर्थ नहीं है जो सामान्यतः दिया जाता है, बल्कि वह है जिसे हम यहाँ आश्रम में बच्चों को देने का प्रयास करते हैं : कला-संस्कृति की शिक्षा... शारीरिक शिक्षा से लेकर, यानी, सबसे अधिक जड़-भौतिक की प्रगति से लेकर आध्यात्मिक शिक्षा तक, और योग द्वारा प्रगति; यानी चहुँमुखी शिक्षा—उस सबकी शिक्षा जो मानवजाति को भविष्य की उपलब्धि की ओर ले जाये। शिक्षा को बढ़ाने, धरती के भौतिक-आर्थिक आधार को विकसित करने के लिए धन का उपयोग होना चाहिये—इसका बुद्धिमत्तापूर्ण उपयोग होना चाहिये, यह नहीं कि इसे व्यर्थ में नष्ट किया जाये, इसके पीछे अपनी ऊर्जाएँ बरबाद की जायें। धन-दौलत का ऐसा उपयोग होना चाहिये कि वह व्यक्ति की ऊर्जाओं को अधिकाधिक बढ़ाये।

लेकिन कितने हैं जो धन का सही उपयोग करना जानते हैं? बहुत ही कम, इसी कारण उन्हें उसका उचित उपयोग करना सिखाना होगा। जिसे मैं 'सिखाना' कहती हूँ वह है, उदाहरण बनना। हम जगत् में सच्चा जीवन जीने का उदाहरण बनना चाहते हैं। इस चुनौती को मैं समस्त वित्तीय जगत् के सम्मुख रख रही हूँ : मैं उनसे कह रही हूँ कि अपनी मूढ़ व्यवस्था के द्वारा वे धरती को निस्तेज कर रहे, उसे बरबाद कर रहे हैं; और इससे भी बदतर यह कि वे धन का उपयोग निरर्थक वस्तुओं के लिए कर रहे हैं, धन, जो मानवता की सेवा का साधन होना चाहिये, जिसकी वास्तव में अपनी कोई वास्तविकता नहीं होनी चाहिये, उसे मनुष्यों ने स्वामी बना कर बिठा दिया है—धन को साधन बनना चाहिये, लक्ष्य नहीं। तो जो साधन उनके पास हैं उनका इस्तेमाल वे धरती का रूपान्तर करने में कर सकते हैं न! अगर मैं कहूँ कि धन-दौलत को हमें अतिमानसिक शक्तियों के सम्पर्क में ले आना चाहिये, यानी जीवन को प्रचुरता से, सुन्दरता से भर देना चाहिये, उसका निरन्तर सञ्चार होना चाहिये, यह नहीं कि वह कुछ लोगों के पास जमा रहे, कुम्हलाता रहे, सड़ता रहे... उसे पूर्ण चन्द्र की तरह खिल कर सारी धरती पर चाँदनी बिखेरनी चाहिये।

४ अक्तूबर १९५८ एक शिष्य का श्रीमाँ के साथ वार्तालाप से

काला धन शान्ति को हर लेता, बीमारियों को ले आता है

(श्रीमाँ हँसती हैं) जानते हो, बहुत-से लोग दीवारें खोद कर रुपये रखते हैं। (उसके सामने वे कोई तस्वीर या परदा लगा देते हैं)। दीवारों में खजाना भरा है, कई करोड़ रुपये : लाखों-करोड़ों रुपये दीवारों में छिपे पड़े हैं! और फिर ऐसे लोग चिन्ता में घुल कर बीमार पड़ जाते हैं, उन्हें हमेशा पुलिस के छापे का डर बना रहता है; अगर वे उन पैसों को दे दें तो समाज में माननीय बन सकते हैं! फिर उन्हें भय भी नहीं खायेगा, वे शान्ति से जी पायेंगे।...

बड़ी ही अजीब बात है कि (इसमें अब तक एक भी विकल्प नहीं हुआ) जिनके पास मुझे पैसा भेंट करने के अवसर आये, लेकिन वे देना नहीं चाहते थे—क्योंकि उन्हें अपने पैसों से बहुत आसक्ति थी—उनके पास से धन चला गया। या तो सरकार ने उसे ज़ब्त कर लिया या वे आर्थिक अथवा औद्योगिक संकट में पड़ गये, या फिर उनका पैसा चोरी हो गया—यानी, वे उसे गँवा बैठे!

७ सितम्बर १९६६ एक शिष्य के साथ श्रीमाँ के वार्तालाप से

धन का उद्देश्य उसे व्यवहार में लाना है, उस पर अधिकार जमाना नहीं

... सच्ची बात तो यह है कि कोई धन का स्वामी नहीं है। धन के "स्वामित्व" के इस विचार ने ही सारी चीज को बिगाड़ दिया है। धन को "अधिकार" नहीं बन जाना चाहिये : यह क्रिया का एक साधन है, किसी भी दूसरी शक्ति के जैसी यह भी एक शक्ति है जो तुम्हें दी गयी है, लेकिन तुम्हें इसका उचित उपयोग करना चाहिये... जिसे "परम दाता की इच्छा" कहा जा सकता है, यानी, धन के मामले में तुम्हें निर्वैयक्तिक और दूरदर्शी होना चाहिये। अगर तुम उसके वितरण के योग्य यन्त्र बन जाओ तो वह तुम्हारे पास आता है, और तुम्हारे अन्दर उसके उचित उपयोग की जितनी क्षमता हो उसी अनुपात में वह तुम्हें मिलता है। यही है इसकी सच्ची क्रिया।...

सच्चा मनोभाव है : धन एक वैश्व शक्ति है जिसे धरती पर कार्य-विशेष के लिए रचा गया है, वह कार्य है—धरती को भागवत शक्तियों को ग्रहण करने के लिए तैयार करना ताकि वे यहाँ अभिव्यक्त हो सकें, और धन ऐसे लोगों के हाथों में होना चाहिये जिनके अन्दर बिलकुल स्पष्ट, पूरी-पूरी सच्ची दृष्टि हो।

शुरू करने के लिए पहली चीज यह है (एकदम से प्रारम्भिक) कि कोई अधिकार-भावना न हो—"यह मेरा धन है," इसका क्या अर्थ है? क्या अर्थ है भला इसका?... अब यह बात सचमुच मेरी समझ में बिलकुल नहीं आती। लोग यह क्यों चाहते हैं कि धन पर उनका कब्जा हो? वे उसे अपनी इच्छानुसार खर्चते हैं, जो मरजी करते हैं। इसी तरह तो होता है धन का उपयोग। हाँ, कुछ ऐसे लोग होते हैं जो धन की राशि पर राशि बस जमा करते रहते हैं। लेकिन अगर लोग यह समझ सकें कि वे बस धन को ग्रहण करने वाले *ट्रांसमीटर सेट* हैं, वह *सेट* जितना विशाल होगा (वैयक्तिक अधिकार से एकदम उलटी चीज) उतना ही निर्वैयक्तिक और उदार होगा, और वह अधिकाधिक शक्तियों को अपने अन्दर समा सकेगा ("शक्तियाँ", यानी, उसका भौतिक रूप है—बैंक के नोट, धन-दौलत)। और उसके उपयोग की उत्तम योग्यता के अनुपात में ही धन खर्च करने की सच्ची शक्ति हमारे अन्दर आती है; "उत्तम" का अर्थ है, सर्वसामान्य प्रगति के दृष्टिकोण से उत्तम, जब हमारे अन्दर विस्तृततम दृष्टि हो, विस्तृततम समझ हो और हम पूरी तरह से जागरूक, यथार्थ हों, तभी हम धन का सच्चा उपयोग कर सकते हैं, लेकिन हम तो अपने अहं की झूठी आवश्यकताओं में उसे व्यर्थ उड़ा देते हैं; धन को तो सचमुच पृथ्वी के व्यापक विकास के लिए

खर्च करना चाहिये, लेकिन उसके लिए मनुष्य को अपनी आन्तरिक दृष्टि से देखना सीखना होगा।

जमा करना और खर्च करना

सभी मिथ्या क्रियाओं के पीछे एक सच्ची क्रिया होती ही है: चीजों के कम-से-कम अपव्यय में ज्यादा-से-ज्यादा फल प्राप्त करना और उनका अच्छी तरह उपयोग करके उनकी व्यवस्था इत्यादि करने में एक असीम आनन्द प्राप्त होता है। जिनके अन्दर सञ्चित करने की प्रवृत्ति हो उनमें अगर दृष्टि विकसित हो जाये, यानी धन का सदुपयोग करने की क्षमता, तो वे बड़े पैमाने पर कार्य कर सकते हैं।...

क्या तुम मुझे बता सकते हो कि लोगों को बक्सों या दीवारों में धन छिपाने में क्या आनन्द मिलता है भला! सच्चा आनन्द तो कभी नहीं मिल सकता। किसी कंजूस के लिए आनन्द की पराकाष्ठा होती है कि वह पैसों से ठुँसा अपना बक्सा बार-बार खोल कर देख ले! इसे क्या तुम आनन्द की संज्ञा दोगे! कुछ लोग बहुत खर्चीले होते हैं, वे धन जुटाना और साथ ही उसे खर्च भी करना चाहते हैं; यह अलग बात है, वे उदारप्रकृति के होते हैं, लेकिन होते हैं फिर भी असंयमित और अव्यवस्थित।... लेकिन सभी सच्ची आवश्यकताओं को पूरा करने की खुशी कुछ और ही होती है, यह अच्छी चीज है। यह मानों मिथ्यात्व को सत्य में बदलने, दुःख को सुख में बदलने जैसा कार्य है; खेद की बात तो यह है कि मनुष्यों ने धन खर्च करने की शक्ति को एक कृत्रिम और मूर्खतापूर्ण आवश्यकता तथा व्यापार बना दिया है—इसे तो स्वाभाविक शक्ति ही बने रहना चाहिये, यानी, राष्ट्र के निर्माण-हेतु इस या उस कार्य के लिए खर्च करना, चीजों को व्यवस्थित करने, निर्माण-मरम्मत इत्यादि-इत्यादि सैकड़ों चीजों में धन लगता ही है। मैं समझ सकती हूँ कि इन चीजों के लिए जिनके पास धन होता है उन्हें उसे बड़ी तादाद में जमा करके रखना ही होता है ताकि आवश्यकतानुसार वे उसे खर्च कर सकें, और खर्च करने का यह आनन्द सच्चा आनन्द है (न कि अपने स्वार्थ के लिए उसका पहाड़ बना कर रखना)।

जमा करने और खर्च करने के संगठन की आवश्यकता... (आज दोनों ही चीजें अपनी सच्ची जगह पर नहीं हैं) अगर दोनों का संयोजन हो जाये तो

धन के बारे में स्पष्ट दृष्टि और उसका सदुपयोग करने का अच्छे-से-अच्छा अवसर प्राप्त हो सकता है।

और तब धीरे-धीरे करके हम धन को उसका सच्चा मूल्य और अर्थ प्रदान कर सकते हैं।...

१० अप्रैल १९६८ एक शिष्य के साथ श्रीमाँ के वार्तालाप से

उदारता

जिन चीजों को तुम गुण या दोष कहते हो वे सब हमेशा अपने पीछे रहने वाली किसी चीज के विकृत रूप होते हैं, और वह चीज न तो यह है, न वह, बल्कि कुछ और ही है। और फिर, मैं कहती हूँ, उदारता के पीछे जो सत्य पाया जाता है वह है, फैलने वाली शक्तियों की क्रिया। लेकिन इन शक्तियों के फैलने से पहले यह जरूरी है कि वे कहीं पर केन्द्रित हों। अतः, स्पन्दन की-सी एक गति होती है; पहले शक्तियाँ केन्द्रित होती हैं, फिर फैलती हैं और फिर वे पुनः केन्द्रित होती हैं और फिर फैलती हैं...। लेकिन अगर तुम हमेशा, इकट्ठा किये बिना फैलाते ही रहना चाहो तो कुछ समय बाद तुम्हारे पास फैलाने के लिए कुछ भी नहीं बच रहता। शक्तियों के लिए—सभी शक्तियों के लिए—यही बात है। और फिर, मैंने लिखा है (बल्कि मैं कभी लिखूँगी) कि धन एक शक्ति है, यह उसके सिवा कुछ नहीं है। इसलिए किसी को व्यक्तिगत रूप से उसे अपने वश में रखने का अधिकार नहीं है, क्योंकि वह केवल शक्ति है, प्रकृति की और विश्व की अन्य सभी शक्तियों की तरह। अगर तुम प्रकाश को एक शक्ति के रूप में लो तो किसी के दिमाग में यह बात न आयेगी कि वह कहे : "प्रकाश पर मेरा अधिकार है," और यह चाहे कि प्रकाश को अपने कमरे में बन्द कर दे, किसी और को न दे! हाँ, धन से लोग ऐसे बौरा जाते हैं कि वे कल्पना करते हैं मानों यह कोई ऐसी चीज है जिसे वे अपने वश में कर सकते हैं, रख सकते हैं, मानों वह उनकी अपनी हो और जिसे वे अपनी निजी सम्पत्ति बना सकते हों। यह ठीक वही चीज है। मैं कागज के रूप में धन की बात नहीं कर रही। यह तो, स्वभावतः ऐसी बात होगी जैसे तुम्हारे दीपक की रोशनी। दीपक तुम्हारा हो सकता है और तुम कहते हो : "यह मेरा प्रकाश है।" धन, तुम्हारे नोट, तुम्हारे चाँदी के टुकड़े *तुम्हारा* धन है। परन्तु ये धन नहीं हैं। इन सबके पीछे एक शक्ति होती है,

विनिमय की शक्ति जो धन है। वह किसी की नहीं होती। वह सबकी होती है। वह ऐसी चीज है जो सञ्चार से ही जीवित रह सकती है। अगर तुम उसका ढेर लगाना चाहो तो वह सड़ जाती है। यह ऐसा होगा जैसे तुम किसी गुलदान में पानी को बन्द कर दो और हमेशा रखना चाहो। कुछ समय के बाद तुम्हारा पानी बिलकुल सड़ जायेगा। धन के साथ भी यही बात है। लेकिन लोग अभी तक यह नहीं समझे हैं।

धन के लिए कृपणता

सभी चीजों के लिए कृपणता—एक कृपणता आध्यात्मिक चीजों के लिए भी होती है। ऐसे कंजूस होते हैं जो सभी शक्तियों को अपने ही लिए रख लेना चाहते हैं। कुछ भी नहीं देना चाहते। लेकिन मैंने अभी-अभी तुम्हें इसका सत्य बतलाया है : फैलाने की शक्ति होने के लिए तुम्हारे अन्दर सञ्चय करने की शक्ति भी होनी चाहिये। अगर तुम्हारे अन्दर दोनों में से एक ही हो तो असन्तुलन हो जाता है और तब यह कृपणता या अपव्यय बन जाती है। तुम्हारे अन्दर सन्तुलित, लयबद्ध गति के रूप में दोनों चीजें होनी चाहियें—सन्तुलन, जिसके बारे में हम अभी बात कर रहे थे। क्योंकि, वास्तव में, यह सिद्ध करना बहुत सरल होगा कि इस समय सन्तुलन ही सच्ची चीज है। तुम्हें न इस तरफ होना चाहिये, न उस तरफ, इसी को बुद्ध "मध्यम मार्ग" कहते हैं। मध्यम मार्ग सन्तुलन का मार्ग है। इसलिए जैसे रस्सी पर चलने वाला लाठी के सहारे अपना सन्तुलन रखता है उसी तरह तुम्हें भी अपने-आपको ठीक रखना जानना चाहिये।

लेकिन दुनिया का उदार-से-उदार आदमी भी कुछ न दे सकेगा यदि उसके पास देने के लिए कुछ न हो। इसलिए यदि उसने सञ्चय नहीं किया है तो किसी और ने उसके लिए सञ्चय किया होगा। लेकिन अगर उसकी जेब में कुछ नहीं है तो वह कुछ भी न दे सकेगा! यह तो स्पष्ट ही है। और सञ्चय करने की शक्ति भी उतनी ही जरूरी है जितनी वितरण करने की शक्ति। जब ये दोनों चीजें अहंकारयुक्त हो जाती हैं तो उनमें विकार आ जाता है, वे बिलकुल विकृत हो जाती हैं और अपना सारा मूल्य खो बैठती हैं।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ५, पृ. ३९१-९२

धन का अपव्यय

केवल पैसा ही नष्ट नहीं होता!

'ऊर्जा', 'चेतना' हजारगुना अधिक, बल्कि **असीम** रूप में नष्ट होती है। यदि यह अपव्यय न हो... तो मेरे विचार में आश्रम का अस्तित्व ही न रहेगा! एक सेकेण्ड भी ऐसा नहीं जाता जब कोई अपव्यय नहीं होता—कभी-कभी तो अवस्था इससे भी बुरी होती है। लोगों की यह आदत है—मैं आशा करती हूँ कि वह सचेतन नहीं है—कि व्यक्ति यथासम्भव अधिक-से-अधिक 'ऊर्जा', 'चेतना' ग्रहण कर लेता है और फिर उसे व्यक्तिगत तुष्टियों के लिए काम में लाता है। वस्तुतः, यह ऐसी चीज है जो हर मिनट हो रही है। यदि यह समस्त 'ऊर्जा', समस्त 'चेतना' जो लगातार तुम सब पर उँडेली जाती है, सच्चे उद्देश्य के लिए, यानी, अगर भागवत कार्य और उसकी तैयारी के लिए प्रयुक्त की जाती तो अब तक हम मार्ग पर बहुत आगे बढ़ गये होते, उससे कहीं आगे जहाँ अभी हम हैं। किन्तु प्रत्येक व्यक्ति थोड़े-बहुत सचेतन रूप में, सहज प्रवृत्तिवश तो अवश्य ही, इतनी 'चेतना' और 'शक्ति' आत्मसात् कर लेता है जितनी कर सकता है और ज्यों ही वह इस 'ऊर्जा' को अपने अन्दर अनुभव करने लगता है, वह उसे अपने व्यक्तिगत कार्यों में, अपनी सन्तुष्टि के लिए खर्च कर डालता है।

यह कौन सोचता है कि यह सारी 'शक्ति' जो यहाँ है, जो सारी धन-शक्तियों से अनन्तगुनी अधिक बड़ी एवं अनन्तगुनी मूल्यवान् है, जो 'शक्ति' सचेतन और सतत रूप में निरन्तर इतने धैर्य और अध्यवसाय के साथ केवल **एकमात्र उद्देश्य** के लिए, भागवत कार्य की पूर्ति के लिए, दी जा रही है, उसे व्यर्थ में न खर्च किया जाये,—ऐसा कौन सोचता है? यह कौन समझता है कि विकास करना, वस्तुओं को और अधिक अच्छी तरह समझने और जीवन को अच्छी तरह जीने के लिए अपने-आपको तैयार करना व्यक्ति का पवित्र कर्तव्य है? कारण, व्यक्ति भागवत 'शक्ति' के **सहारे**, भागवत 'चेतना' के **सहारे** जीता है और फिर, अपने व्यक्तिगत, स्वार्थमय उद्देश्यों की पूर्ति के लिए उन्हें खर्च कर डालता है।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ६, पृ. १७७-७८

"भगवान् के देने के अनेक तरीके हैं।"

यह ठीक बात है। तुम्हारा किसी के प्रति आभार नहीं होता। आभार होता है केवल **भगवान्** के प्रति, पूर्ण रूप से उन्हीं के प्रति। जब कोई उपहार **बिना शर्त के** दिया जाता है तो तुम हमेशा उसे भगवान् से आये हुए उपहार के रूप में ले सकते हो और यह भगवान् पर छोड़ सकते हो कि उसके बदले में या उसके प्रत्युत्तर में क्या जरूरी है।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १५, पृ. ५६

धन और गुह्य सत्य

धन की शक्ति और उसका प्रभाव

... धन पर प्राणिक शक्तियों का बहुत बड़ा प्रभाव होता है।

(थोड़ी चुप्पी के बाद) हाँ तो, जब तुम धन के बारे में सोचते हो तो तुम बैंक के नोट या सिक्कों या किसी प्रकार की दौलत या मूल्यवान् चीजों के बारे में सोचते हो। लेकिन यह तो केवल एक ऐसी शक्ति की भौतिक अभिव्यक्ति है जिसे प्राण के द्वारा चलाया जा सकता है और जो हस्तगत और नियन्त्रित किये जाने पर, लगभग स्वतः ही और अधिक धन ले आती है। और यह चीज एक प्रकार की शक्ति है।

(मौन) यह एकदम भौतिक स्पन्दनों को आकर्षित करने वाली शक्ति है और उसमें उपयोग करने की क्षमता भी होती है और यह उसकी शक्ति को बढ़ा देती है—यह शारीरिक कसरत की तरह की चीज है, समझे—उपयोग के द्वारा यह इस शक्ति को बढ़ाती है।

उदाहरण के लिए, अगर इस शक्ति पर तुम्हारा अधिकार है—यह एक ऐसी शक्ति है जिसका रंग, प्राणमय जगत् में लाल, बहुत गहरे तेज लाल और गहरे, किन्तु न बहुत तेज और न हलके सुनहरे रंग के बीच होता है। हाँ तो, जब यह शक्ति गतिशील या सञ्चारित होती रहे तो उसका बल बढ़ जाता है। वह कोई ऐसी चीज नहीं है जिसे बिना उपयोग के इकट्ठा करके रखा जा सके। वह ऐसी शक्ति है जिसका हमेशा सञ्चार होते रहना चाहिये। उदाहरण के लिए, जो लोग कंजूस होते हैं, जो यथासम्भव सारी सम्पत्ति अपनी ओर खींचते और सारा धन इकट्ठा करते हैं वे इस शक्ति को सञ्चार में उपयोग किये बिना रख छोड़ते हैं; परिणामस्वरूप, या तो वह हाथ से निकल जाती है या सुन्न पड़ जाती है और अपना बल खो बैठती है।

धन की शक्ति को सँभालने का सही तरीका

इस धन-शक्ति के प्रवाह में रहने की सच्ची रीति ठीक वही है जो यहां लिखी है : पूर्ण निर्वैयक्तिकता का भाव, यह भाव कि वह ऐसी चीज नहीं है जिस पर तुम्हारा अधिकार हो या जो तुम्हारी अपनी हो, बल्कि वह एक शक्ति है जिसे तुम चला सकते हो, वह दिशा दे सकते हो जिस दिशा में

उसे जाना चाहिये ताकि वह अधिक-से-अधिक उपयोगी कार्य कर सके। और इन गतिविधियों द्वारा, इस निरन्तर क्रिया द्वारा ही यह शक्ति बढ़ती है —आकर्षण की शक्ति, और व्यवस्था की कुछ शक्ति भी। कहने का मतलब यह कि वह व्यक्ति भी, जिसके पास कोई भौतिक साधन नहीं हैं, जो ऐसी परिस्थितियों में नहीं है जहां वह भौतिक रूप से धन का प्रयोग कर सके, अगर उसके हाथ में यह शक्ति हो तो वह उसे क्रियाशील बना सकता है, उसे सञ्चारित कर सकता है, और अगर कभी उसे जरूरत पड़े तो वह उससे जरूरत के अनुसार शक्ति ग्रहण कर सकता है, भले बाहरी तौर से इस व्यक्ति के पास धन के आने का न कोई चिह्न हो और न कारण। हो सकता है कि वह व्यक्ति ऐसी परिस्थितियों में हो जो सामान्य धन की परिस्थितियों से ठीक उलटी होती हैं, और फिर भी वह इस शक्ति का उपयोग करे और उसे अपने काम के लिए जितने धन की आवश्यकता हो उतना उसके अधिकार में रहे।

धन की शक्ति विकृत जगत् से सम्बन्ध रखती है

... धन की शक्ति एक ऐसे जगत् की है जो विकृत रूप में ही पैदा हुआ था। यह चीज प्राण-जगत् की है; और वे (श्रीअरविन्द) यही कहते हैं, है न? वे कहते हैं कि वह (धन) प्राणिक और भौतिक जगत् की चीज है। इसलिए सदा-सर्वदा, वह आसुरिक शक्तियों के कब्जे में रहा है; और जो करना चाहिये वह ठीक यह है कि आसुरिक शक्तियों से उसे पुनः जीत लिया जाये।

इसी कारण पहले जमाने में जो लोग योग करना या किसी साधना का अनुसरण करना चाहते थे, वे कहा करते थे कि धन को छूना भी नहीं चाहिये, क्योंकि—वे कहते थे—कि यह एक आसुरिक चीज है या कम-से-कम भागवत जीवन के ठीक विपरीत है। लेकिन सारा विश्व, अपनी सारी अभिव्यक्ति के साथ 'स्वयं भगवान्' है, और परिणामस्वरूप पूरी तरह 'उनका' है; और इस आधार पर वे कहते हैं कि धन की शक्तियाँ भगवान् की हैं। उन्हें फिर से जीत कर भगवान् को लौटाना होगा। अभी तक वे आसुरिक शक्तियों के प्रभाव में थीं : उन्हें फिर से जीत कर भगवान् के हाथों में सौंपना चाहिये ताकि 'वे' उन्हें 'अपने' रूपान्तर के कार्य में लगा सकें।

धन का प्रयोग सिर्फ एक परम्परा है

... लेकिन यह विशुद्ध रूप से परम्परा है। उदाहरण के लिए, ऐसे देश हैं जहाँ धन के बदले में छोटे-छोटे सीप दिये जाते हैं। ऐसे भी देश हैं जहाँ... किसी ने इस तरह की कहानी लिखी है : उत्तर दिशा में, धन का मतलब है, मछली पकड़ने के लिए कँटिया; और धनी वह कहलाता है जिसके पास सबसे ज्यादा कँटियाँ हों। क्या तुम जानते हो कि कँटिया क्या चीज होती है, नहीं?—लोहे के छोटे-छोटे काँटे जिनसे मछलियाँ पकड़ते हैं और जिन्हें धागे के सिरे से बाँध दिया जाता है। अतः, करोड़पति वह है जिसके पास सबसे ज्यादा कँटियाँ हों!

यह विशुद्ध रूप से परम्परा है। इसके पीछे है वह शक्ति जिसकी मैं बात कर रही हूँ, हाँ, तो वह अनेक प्रकार से अभिव्यक्त होती है। उदाहरण के लिए, सोना भी, तुम समझे... मनुष्यों ने सोने को विशेष मूल्य प्रदान किया है, क्योंकि सभी धातुओं में से यही है जो सबसे कम खराब होती है। इसे लगभग अनिश्चित काल तक रखा जा सकता है। और यही कारण है, इसके सिवा दूसरा कोई कारण नहीं। लेकिन यह मात्र परम्परा है। प्रमाण यह है कि जब कभी सोने की नयी खान मिली है और उसकी खुदाई की गयी है तो सोने का मूल्य गिर गया है। ये तो मनुष्यों के बीच केवल रिवाज हैं। लेकिन धन को ताकत बनाने वाली चीज यह नहीं है, वह है उसके पीछे की शक्ति। जैसा कि मैं अभी कह रही थी, यह ऐसी शक्ति है जिसमें किसी भी चीज को आकर्षित करने या उसका उपयोग करने की क्षमता है, सभी भौतिक चीजों को और...

तो इसका उपयोग रिवाज के अनुसार होता है। अब तो जानी-मानी बात है कि धन के लिए कागज के छोटे-छोटे टुकड़े काम आते हैं जो मैले पड़ जाते हैं और जिन पर कुछ छपा रहता है। वे बिलकुल घिनौने होते हैं, बहुधा केवल आग सुलगाने के काम के होते हैं। लेकिन ये एक बहुत बड़ी सम्पत्ति माने जाते हैं। क्यों? क्योंकि यह एक रिवाज है। लेकिन जो व्यक्ति इसे आकर्षित करके किसी अच्छे काम के लिए इसका उपयोग करने में, इस जगत् के कल्याण को, इस जगत् के कल्याण और कुशलक्षेम को बढ़ाने में समर्थ है, उसे धन-शक्ति पर, यानी, धन के पीछे जो शक्ति है उस पर प्रभुत्व प्राप्त है।

कागज़ी मुद्रा

फ़्रेंच में धन को "आर्ज़ां" (Argent) कहते हैं। आर्ज़ां (चाँदी) उस सफेद धातु को भी कहते हैं जो दूसरी धातुओं की अपेक्षा... जरा ज्यादा सुन्दर और टिकाऊ होती है, जिसमें कम ज़ंग लगता है और जो कम खराब होती है। इसलिए उसे आर्ज़ां (पैसा) कहते हैं। और फिर, बढ़ते-बढ़ते समस्त धन "आर्ज़ां" कहलाने लगता है। वह कागज होता है, सोना होता है, कभी-कभी केवल लिखे हुए पुर्ज़े होते हैं... क्योंकि बड़ी-बड़ी सम्पत्तियाँ होती हैं जो केवल कागज पर लिखित अंक के रूप में होती हैं, ये कागज भी नहीं जिनका चलन है, केवल बही-खाते! कुछ सम्पत्तियाँ होती हैं जो बहुत ही विशाल होती हैं, जो जगत् पर शासन करती हैं और जो केवल कागजों पर लिखे दस्तावेज, मनुष्यों के बीच परम्पराएँ होती हैं। सम्पत्ति बढ़ सकती है, तिगुनी-चौगुनी, दसगुनी हो सकती है, या फिर वह न के बराबर बन सकती है। लोग सब कुछ बेचते हैं, रूई बेचते हैं, शक्कर बेचते हैं, अनाज बेचते हैं, कॉफ़ी बेचते हैं, सब कुछ बेचते हैं, लेकिन वहाँ होता कुछ नहीं! न रूई होती है, न शक्कर, न अनाज, न कुछ और। सब कुछ कागज पर ही होता है! तुम लाखों रुपये की रूई खरीदते हो : तुम्हारे पास तनिक भी रूई नहीं होती! वह सब कागज पर लिखा है। फिर, कुछ समय बाद, तुम फिर से बेच देते हो। अगर रूई की कीमत बढ़ी है तो तुम्हें मुनाफ़ा होता है, अगर घटी है तो तुम्हें घाटा होता है; जब कि तुम्हारे पास होता कुछ भी नहीं, न धन, न रूई, न कुछ और, होता है केवल कागज का एक टुकड़ा! *(हँसी)* यह पूरी तरह से केवल रिवाज है।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ६, पृ. २८४-८९

तुम जो कुछ हो, तुम्हारे पास जो कुछ है, वह सब दे दो। तुमसे इससे ज्यादा की माँग नहीं की जाती, लेकिन इससे कम की भी नहीं।

सच्ची सम्पदा वह है जिसे मनुष्य भगवान् को अर्पित करता है।

तुम उसी धन से धनवान् बनते हो जिसे तुम भागवत कार्य के अर्पण करते हो।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १५, पृ. ५४

जितना ज्यादा पैसा उतनी ज्यादा ललक

व्यक्ति के पास जितना अधिक पैसा होता है, वह उतनी ही अधिक मुसीबत की अवस्था में होता है। हाँ, यह एक मुसीबत है।

पैसा होना एक महान् विपत्ति है। वह तुम्हें मूर्ख बना देता है, वह तुम्हें कंजूस बना देता है, वह तुम्हें दुष्ट बना देता है। यह संसार की सबसे बड़ी मुसीबतों में से एक है। धन एक ऐसी चीज है जो तुम्हारे पास तब तक न होनी चाहिये जब तक तुम कामना-रहित न हो जाओ। जब तुम्हारे अन्दर कामना न रहे, जब तुम्हारे अन्दर आसक्तियाँ न रहें, जब तुम्हारी चेतना धरती के समान विशाल हो जाये, तब तुम सारी धरती का धन रख सकते हो; वह सभी के लिए बहुत अच्छा होगा। लेकिन जब तक ऐसा न हो, तब तक तुम्हारे पास जो भी धन है वह तुम्हारे लिए अभिशाप है। यह बात मैं किसी के भी सामने कहूँगी, ऐसे आदमी के सामने भी जो धनवान् होने में अपनी शान समझता है। यह एक मुसीबत है और शायद एक कलंक भी, यानी, यह भगवान् के प्रति असन्तोष की अभिव्यक्ति है। गरीब होने की अपेक्षा अमीर होने पर अच्छा होना, समझदार होना, बुद्धिमान् और उदार होना, अधिक उदार होना—समझ रहे हो न—कहीं अधिक कठिन है। मैंने बहुत-से देशों में बहुत-से लोग देखे हैं, और सभी देशों में मुझे जो सबसे अधिक उदार लोग मिले, वे सबसे गरीब थे। जैसे ही जेबें भर जाती हैं कि एक तरह की बीमारी तुम्हें आ पकड़ती है, वह है धन के लिए एक घिनौनी आसक्ति। मैं तुम्हें विश्वास दिलाती हूँ, यह एक अभिशाप है। अतः, जैसे ही तुम्हारे पास धन आये तो करने-लायक पहली चीज यह है कि उसे दे दो। लेकिन जैसा कि कहा जाता है, विवेक के बिना मत दो। उन लोगों की तरह मत करो जो परोपकार करते हैं, क्योंकि वह उन्हें उनकी भलाई से, उनकी उदारता से और उनके महत्त्व से भर देता है। तुम्हें सात्त्विक ढंग से क्रिया करनी चाहिये, यानी, यथासम्भव उसका अच्छे-से-अच्छा उपयोग करो। और फिर, हर एक को अपनी चेतना की सबसे ऊँची स्थिति में यह खोजना चाहिये कि उसके धन का अच्छे-से-अच्छा उपयोग क्या हो सकता है। और आदान-प्रदान के बिना धन का कोई मूल्य नहीं। हर एक के लिए और सबके लिए धन का मूल्य तभी है जब वह खर्च किया जाये।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ७, पृ. ५८-५९

धन की शक्ति

मैं तुमसे पहले भी एक बार कह चुकी हूँ कि धन एक शक्ति है, 'प्रकृति' की एक शक्ति है; उसे आदान-प्रदान का एक साधन होना चाहिये, एक गतिशील शक्ति होना चाहिये, जैसे बहता हुआ पानी एक गतिशील शक्ति है।

यह ऐसी चीज है जो उत्पादन में, व्यवस्था में सहायता कर सकती है। यह एक सुविधापूर्ण तरीका है, क्योंकि मूलतः यह चीजों के प्रचुर मात्रा में तथा मुक्त आदान-प्रदान का एक साधन है।

यह शक्ति उन लोगों के हाथों में जानी चाहिये जो इसका यथासम्भव अच्छे-से-अच्छा उपयोग करना जानते हों, यानी, जैसा कि मैंने शुरू में ही कहा है, उन लोगों के हाथों में जिन्होंने किसी-न-किसी तरह से सभी व्यक्तिगत कामनाओं और सभी आसक्तियों से अपने-आपको मुक्त कर लिया है या उन्हें किसी तरह निकाल बाहर किया है। इसमें हम धरती की आवश्यकताओं को समझने के लिए पर्याप्त रूप से विशाल अन्तर्दृष्टि को जोड़ सकते हैं, साथ ही, एक ऐसे ज्ञान को जोड़ सकते हैं जो इतने पर्याप्त रूप में पूर्ण हो कि वह सभी आवश्यकताओं को व्यवस्थित करना जानता हो और इस शक्ति को उन उपायों से काम में लाना जानता हो।

अगर, इसके अलावा, इन लोगों में श्रेष्ठतर आध्यात्मिक ज्ञान हो, तो वे इस शक्ति का उपयोग धरती पर थोड़ा-थोड़ा करके उस चीज का निर्माण करने के लिए कर सकते हैं जो दिव्य 'सामर्थ्य', 'शक्ति' और 'कृपा' को अभिव्यक्त करने-योग्य होगी। और तब, धन की, समृद्धि की यह शक्ति, यह आर्थिक बल, जिसके बारे में मैंने अभी कहा है कि वह एक अभिशाप की तरह है, वही सबके भले के लिए परम आशीर्वाद बन जायेगी।

चूँकि मेरा ख्याल है कि अच्छी-से-अच्छी चीजें सबसे बुरी बन जाती हैं। शायद बुरी-से-बुरी चीजें भी अच्छी-से-अच्छी बन सकती हैं। ऐसे लोग हैं जो कहते हैं कि बुरे-से-बुरे लोग ही अच्छे-से-अच्छे बनते हैं। मैं आशा करती हूँ कि अच्छे-से-अच्छे लोग बुरे-से-बुरे नहीं बन जायेंगे, क्योंकि यह सचमुच दुःखद होगा। लेकिन फिर भी, निश्चय ही, बड़ी-से-बड़ी शक्ति भी, यदि उसका दुरुपयोग किया जाये तो एक बहुत बड़ी मुसीबत बन सकती है; जब कि वही बहुत बड़ी शक्ति, यदि उसका सदुपयोग किया जाये तो आशीर्वाद बन सकती है। सब कुछ इस पर निर्भर करता है कि तुम चीजों का उपयोग कैसे करते हो।

जगत् में हर चीज का एक स्थान है, एक काम है, एक सच्चा उपयोग है, और अगर उसे किसी और काम में लगाया जाये तो यह अव्यवस्था पैदा करती है, गड़बड़झाला होता है, अन्ध-व्यवस्था आती है। और चूँकि जगत् में, जैसा कि वह है, बहुत ही कम चीजें ऐसी हैं जिन्हें उनके सच्चे काम के लिए उपयोग में लाया जा रहा है, इसलिए, बहुत ही कम चीजें हैं जो अपने सच्चे स्थान पर हैं, और चूँकि संसार एक भीषण अव्यवस्था में है, इसीलिए ये सब दुःख और ये सब कष्ट हैं। अगर हर चीज अपने स्थान पर, एक सामञ्जस्यपूर्ण सन्तुलन में होती तो समस्त संसार अब जिस दुःख और कष्ट की अवस्था में है उसमें होने की आवश्यकता के बिना प्रगति कर पाता।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ७, पृ. ६०-६१

धन आज असुरों की मुट्ठी में है

"धन-शक्ति इस समय प्राण-जगत् की शक्तियों और सत्ताओं के प्रभाव या अधिकार में है। इसी प्रभाव के कारण धन का उपयोग प्रचुर परिमाण में 'सत्य' की सेवा के लिए होता हुआ हम कभी नहीं देखते। यह शक्ति सदा मार्ग से च्युत हो जाती है, क्योंकि यह विरोधी शक्तियों के पंजे में है और उन प्रमुख साधनों में से एक है जिनके द्वारा वे शक्तियाँ पृथ्वी पर अपना कब्ज़ा बनाये रखती हैं। धन-शक्ति पर विरोधी शक्तियों का जो अधिकार है वह मजबूती के साथ, पूरे तौर पर और अच्छी तरह संगठित है और इस सुदृढ़ संगठन से कुछ भी निकाल लाना सबसे अधिक कठिन कार्य है। प्रत्येक बार जब तुम इस धन का थोड़ा-सा अंश भी इसके वर्तमान संरक्षकों के हाथों में से निकाल लाने का प्रयत्न करते हो तो तुम्हें एक भीषण युद्ध करना पड़ता है।" *('प्रश्न और उत्तर', १२ मई १९२९)*

परियों की कहानियों में बहुधा यह कहा जाता है कि धनराशि पर साँपों का पहरा रहता है। क्या यह सच है?

हाँ, परन्तु वह कोई भौतिक साँप नहीं होता, वह प्राणिक साँप होता है। धन-कोष की चाभी प्राण-जगत् में रहती है और उस पर एक विशाल काला साँप पहरा देता है—वह बहुत दीर्घकाय सर्प, साधारण सर्प से दसगुना, पचासगुना बड़ा होता

है। वह कोष का द्वारपाल होता है। वह भव्य, श्याम, सदा सीधा खड़ा और जागरूक है। एक बार मैं उसके सामने जा उपस्थित हुई (साधारण तौर पर जब मैं इन सत्ताओं को आज्ञा देती हूँ तो वे मेरी आज्ञा का पालन करती हैं), और मैंने उससे कहा, "मुझे जाने दो।" उसने उत्तर दिया, "मैं बड़ी खुशी से आपको जाने देता, पर यदि मैं ऐसा करूँ, तो वे मुझे मार डालेंगे; इसलिए मैं आपको नहीं जाने दे सकता।" मैंने पूछा, "प्रवेशाधिकार पाने के लिए मुझे तुम्हें क्या देना चाहिये?" उसने कहा, "ओह! केवल एक ही वस्तु मुझे आपको रास्ता देने के लिए विवश कर सकती है; यदि आप मनुष्यों में विद्यमान कामावेग की स्वामिनी बन सकें, यदि आप सारी मानवता के अन्दर उस पर विजय प्राप्त कर सकें तो फिर मैं बाधा नहीं दे सकूँगा, मैं आपको चले जाने दूँगा।"

उसने मुझे अभी तक अन्दर प्रवेश करने नहीं दिया है। मुझे भी स्वीकार करना होगा कि मैंने उसकी शर्त को पूरा नहीं किया है, मैं अभी तक उस पर ऐसा अधिकार प्राप्त करने में समर्थ नहीं हुई हूँ कि सभी मनुष्यों के अन्दर उस पर विजय प्राप्त कर सकूँ। वह बहुत कठिन है।

धन से आसक्ति और मृत्यु

... उदाहरण के लिए, अपने धन के लिए एक कंजूस के आवेग को लो। वह मरता है। उसकी प्राण-सत्ता विघटित हो जाती है, पर धन के लिए उसका अनुराग जीवित रहता है। वह अपने चारों ओर कुछ तत्त्वों को एकत्र करता है ताकि प्राण-जगत् में वह एक जीवन्त और सचेतन सत्ता को आकार प्रदान करे। यदि इस मनुष्य ने अपने जीवन-काल में कहीं कोई खजाना छिपा रखा हो तो यह सत्ता वहाँ जाती है और जिस स्थान पर खजाना छिपा होता है ठीक उसके ऊपर, मानों उसकी रक्षा करने के लिए, और उसके पास लोगों का आना बन्द करने के लिए, वहाँ जम जाती है। परन्तु कुछ लोग संवेदनशील होते हैं और वे, जब उन्हें पता लगता है कि कहीं पर कोई खजाना गड़ा है तो वे उसकी उपस्थिति को अनुभव कर लेते हैं और कहते हैं, "खजाना यहाँ पर है।" यह पहला प्रभाव है। दूसरा प्रभाव यह है कि जब सत्ता यह नहीं चाहती कि कोई उस खजाने को छुए, तो वह हमेशा अपनी सम्पत्ति की रक्षा करने के लिए कोई-न-कोई विपत्ति ढाती है। जो लोग उसके पास जाते हैं उन्हें वह बीमार बना देती है अथवा कोई दुर्घटना करा देती है, यहाँ तक कि हत्या भी करा देती है; कोई भी उपाय उसके

लिए ठीक है। अथवा, यदि व्यक्ति बहुत अधिक संवेदनशील होता है तो उसे वह इतना भयभीत कर देती है कि वह पागल हो जाता है।

फिर बहुत सारी छोटी-छोटी सत्ताएँ भी हैं जो बिलकुल घिनौनी और बहुत बड़ी संख्या में होती हैं और घृणित काम-वासना से उत्पन्न होती हैं। यदि यह वासना (अपनी जैसी सत्ताओं के साथ) मृत्यु के समय विघटित नहीं हो जाती तो ये सत्ताएँ बनी रहती हैं और संवेदनशील व्यक्तियों के वातावरण में आकर उन्हें उकसाने और उत्तेजित करने के लिए जम कर बैठ जाती हैं। ये सत्ताएं काम-क्रिया के समय उद्‌भूत प्राण-शक्ति पर पलती हैं और स्वभावतः ही, उनकी एकमात्र कामना होती है कि जितना अधिक पोषण प्राप्त करना सम्भव हो उतना वे प्राप्त कर लें।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ४, पृ. २२५-२६, २२८-२९

धन की दासता

श्रीअरविन्द "धन रखने के कारण उत्पन्न आदतों के दुर्बलतापूर्ण बन्धन" की चर्चा करते हैं। (श्रीअरविन्द : 'माता' पुस्तक से)

जब तुम समृद्ध होते हो और तुम्हारे पास खर्च करने के लिए बहुत सारा धन होता है, सामान्यतया तुम उसे ऐसी चीजों पर खर्च करते हो जो तुम्हारे लिए सुखद होती हैं, और तुम उन चीजों के अभ्यस्त बन जाते हो, उन चीजों से आसक्त हो जाते हो, और यदि एक दिन धन चला जाता है, तुम उसका अभाव अनुभव करते हो, तुम खिन्न हो जाते हो, तुम दुःखी हो जाते हो और ऐसा अनुभव करते हो कि तुमने सब कुछ खो दिया है, क्योंकि अब तुम्हारे पास वे सब चीजें नहीं होतीं जिन्हें रखने का तुम्हें अभ्यास था। यह एक प्रकार का बन्धन है, एक तरह की दुर्बलतापूर्ण आसक्ति है। जो व्यक्ति बिलकुल अनासक्त होता है वह जब इन सब चीजों के बीच रहता है, तब यह सब उसके लिए ठीक होता है, और जब ये चीजें उसके पास नहीं होतीं तब भी ठीक ही होता है; वह इन दोनों अवस्थाओं के प्रति पूर्णतः उदासीन होता है। यही है समुचित मनोभाव : जब चीजें होती हैं तो वह उनका उपयोग करता है, जब नहीं रहतीं तो वह उनके बिना काम चला लेता है। और उसकी आन्तरिक चेतना में इससे कोई अन्तर नहीं आता। यह सुन कर तुम्हें आश्चर्य होता है, पर बात ऐसी ही है।

धन पर अधिकार

यदि किसी मनुष्य में बहुत अधिक धन कमाने की शक्ति होती है तो क्या उसका यह अर्थ होता है कि उसे पार्थिव शक्तियों पर विशेष संयम प्राप्त है?

यह इस बात पर निर्भर करता है कि मनुष्य किस प्रकार उसे कमाता है। यदि तुम उसे निकृष्ट पद्धतियों से प्राप्त करते हो तो इसका यह अर्थ नहीं कि तुम्हें नियन्त्रण प्राप्त है। परन्तु कोई व्यक्ति यदि, अति सतर्कता के साथ अपने कर्तव्य का पालन करते हुए, देखता है कि धन उसके पास आ रहा है तो स्पष्ट ही इसका कारण यह है कि उसे इन शक्तियों पर एक प्रकार का अधिकार प्राप्त है। कुछ ऐसे लोग होते हैं जो धन को आकर्षित करने की शक्ति रखते हैं और उन्हें उसे प्राप्त करने के लिए बेईमानी करने की जरा भी आवश्यकता नहीं होती। दूसरों को, कुछ कौड़ियाँ पाने के लिए भी, सभी प्रकार के उचित और अनुचित जोड़-तोड़ करने पड़ते हैं। अतएव हम नहीं कह सकते...। हम एक धनवान् को देखते हैं और सोचते हैं कि उसे अवश्य ही धन की शक्तियों पर अधिकार प्राप्त है—नहीं, जरूरी नहीं है। परन्तु कोई मनुष्य यदि पूर्णतः ईमानदार होता है और जिसे वह अपना कर्तव्य समझता है, उसे, धन कमाने की कोई परवाह न करते हुए सम्पन्न करता है, और फिर भी अगर रुपया उसके पास आता है, तो स्पष्ट ही उसका उन शक्तियों के साथ एक प्रकार का सादृश्य होता है।

अम्बार और गढ़ा

यह कहा जाता है कि "गढ़ा खोदे बिना कोई अम्बार नहीं खड़ा कर सकता," मनुष्य किसी दूसरे को दरिद्र बनाये बिना स्वयं समृद्ध नहीं बन सकता। क्या यह सच है?

यह सत्य नहीं है। यदि कोई किसी चीज का उत्पादन करता है तो वह दरिद्रता उत्पन्न करने के बदले समृद्धि लाता है; उस समय बस वह कोई दूसरी वस्तु संसार में वितरित होने के लिए रख देता है जिसका मूल्य रुपये के मूल्य के समान होता है। परन्तु यह कहना कि गढ़ा खोदे बिना कोई अम्बार नहीं खड़ा कर सकता, उन लोगों के लिए बिलकुल ठीक है जो सट्टा करते हैं, जो शेयर बाजार या पूँजी लगाने का व्यवसाय करते हैं—वहाँ यह बात सच है। विशुद्ध सट्टे के व्यापारों में दूसरे के लिए हानिकारक हुए बिना आर्थिक सफलता प्राप्त

करना असम्भव है। पर यह चीज यहीं तक सीमित है। वैसे यदि कोई उत्पादक अपनी उत्पादित वस्तु के बदले में धन का अम्बार खड़ा करता है तो वह कोई गढ़ा नहीं खोदता। अवश्य ही यहाँ प्रश्न है उत्पादन के मूल्य का, परन्तु उत्पादन यदि सचमुच सामान्य मानव की समृद्धि के लिए कोई उपार्जन हो, तो वह गढ़ा नहीं खोदता, वह इस समृद्धि को बढ़ाता है। और दूसरी ओर, न केवल भौतिक क्षेत्र में, बल्कि कला, साहित्य या विज्ञान के लिए, किसी भी उत्पादन के लिए यही बात लागू होती है।

> *जब मैं व्यवसाय (आयात-निर्यात) करता था, मुझे सर्वदा यह अनुभव होता था कि मैं अपने पड़ोसी को लूट रहा हूँ।*

यह दूसरों के व्यय पर जीवन बसर करना है, क्योंकि इससे आढ़तियों की वृद्धि होती है। स्वभावतः ही, यह शायद सुविधाजनक, व्यावहारिक है, परन्तु सामान्य दृष्टिकोण से, और सबसे बढ़ कर जिस ढंग से इसका प्रचलन है उसमें, यह उत्पादक और उपभोक्ताओं के व्यय पर जीवन बिताना है। मनुष्य *एजेंट* बन जाता है, बिलकुल भी इस भावना के साथ नहीं कि वह सेवा करेगा (क्योंकि लाखों में एक व्यक्ति भी ऐसा नहीं है जिसमें यह भावना हो), बल्कि इसलिए कि यह बिना किसी प्रयास के धनोपार्जन का एक आसान मार्ग है। परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि बिना किसी प्रयास के पैसे कमाने के तरीकों में ऐसे दूसरे बहुत-से तरीके हैं जो इससे कहीं अधिक बुरे हैं! ऐसे तरीके अनगिनत हैं।

ईमानदारी और व्यवसाय

> *बाहर रहने वाले मित्र प्रायः मुझसे यह प्रश्न पूछते हैं: "जब मनुष्य अपनी जीविका का उपार्जन करने के लिए बाध्य है तब क्या उसे बस ईमानदारी के सामान्य नियम का ही पालन करना चाहिये या थोड़ा और अधिक कठोर होना चाहिये?"*

यह उस मनोभाव पर निर्भर करता है जिसे तुम्हारे मित्र ने जीवन में अपनाया है। यदि वह एक साधक होना चाहता है तो अनिवार्य रूप से साधारण नैतिकता के नियमों का उसके लिए कोई मूल्य नहीं है। अब, यदि वह सामान्य जीवन

बिताने वाला एक सामान्य व्यक्ति है तो यह एक नितान्त व्यावहारिक प्रश्न है, है न? उसे समस्त परेशानियों से बचने के लिए उस देश के नियमों का अनुसरण करना चाहिये जिसमें वह रहता है! परन्तु ये सभी चीजें, जिनका साधारण जीवन में एक बहुत सापेक्षिक मूल्य होता है और जिनकी ओर एक प्रकार की विशेष तृप्ति के साथ देखा जा सकता है, उसी क्षण बदल जाती हैं जिस क्षण मनुष्य योग करने और दिव्य जीवन में प्रवेश करने का निश्चय कर लेता है। तब सभी मूल्य पूर्ण रूप से बदल जाते हैं; जो साधारण जीवन में ईमानदार है, वह अब तुम्हारे लिए बिलकुल ही ईमानदार नहीं रह जाता। इसके अतिरिक्त, मूल्यों में इतना अधिक परिवर्तन हो जाता है कि हम अब उसी सामान्य भाषा का प्रयोग नहीं कर सकते। यदि कोई दिव्य जीवन के लिए अपने-आपको उत्सर्ग कर देना चाहता हो तो उसे सच्चे रूप में इसे करना चाहिये, अर्थात्, अपने-आपको सम्पूर्ण रूप से दे देना चाहिये, अब कभी कोई काम अपने व्यक्तिगत हित के लिए नहीं करना चाहिये। ऐकान्तिक भाव से उसी भागवत 'शक्ति' पर निर्भर रहना चाहिये जिसके हाथों में वह अपने-आपको सौंप देता है। प्रत्येक चीज पूरी तरह बदल जाती है, बदल जाती है न?—प्रत्येक चीज, प्रत्येक चीज, यह पूरा उलटाव होता है। मैंने अभी इस पुस्तक से जो कुछ पढ़ा है वह पूरी तरह केवल उन लोगों पर लागू होता है जो योग करना चाहते हैं; दूसरों के लिए इसका कोई अर्थ नहीं है, यह एक निरर्थक शब्दावली है जिसका कोई अर्थ नहीं, पर जो लोग योग करना चाहते हैं उनके लिए यह अनिवार्य है। यही बात हमेशा उन सब विषयों पर भी लागू होती है जिन्हें हमने अभी हाल ही में पढ़ा है: मनुष्य को खूब सावधान रहना चाहिये कि वह एक पग एक ओर और दूसरा दूसरी ओर न रखे, एक ही साथ दो नावों पर नहीं चढ़ना चाहिये जो दोनों अपने-अपने पथ पर जा रही हों। बस, यही बात श्रीअरविन्द ने कही थी: मनुष्य को "द्विविध जीवन" का अनुसरण नहीं करना चाहिये। उसे एक या दूसरी चीज का अवश्य त्याग कर देना चाहिये—मनुष्य दोनों का अनुसरण नहीं कर सकता।

परन्तु इसका मतलब यह नहीं है कि हम अपने जीवन की परिस्थितियों से बाहर निकलने के लिए बाध्य हैं: सच पूछा जाये तो आन्तरिक मनोभाव को पूर्णतः परिवर्तित हो जाना चाहिये। हमें जो कुछ करने का अभ्यास है उसे हम कर तो सकते हैं, परन्तु करना होगा एक बिलकुल भिन्न मनोभाव के साथ। मैं नहीं कहती कि योग करने के लिए जीवन की सभी चीजों को छोड़ देना और

एकान्त में किसी आश्रम में चले जाना जरूरी है। अभी, यह सच है कि यदि कोई संसार में और सांसारिक परिस्थितियों में योग करे तो यह अधिक कठिन है, पर यह अधिक पूर्ण भी है। कारण, प्रत्येक क्षण उसके सामने ऐसी समस्याएँ उपस्थित होंगी जो उस व्यक्ति के सामने नहीं उपस्थित होतीं जो सब कुछ छोड़ कर एकान्त में चला गया है; उस तरह के मनुष्य के लिए ये समस्याएँ घट कर अत्यल्प हो जाती हैं—जब कि जीवन में मनुष्य के सामने सभी प्रकार की कठिनाइयाँ आती हैं जिनका प्रारम्भ उन लोगों के अज्ञान से ही हो जाता है जो उसके चारों ओर होते हैं और जिनके साथ उसे व्यवहार करना पड़ता है; उसे इसके लिए तैयार रहना होगा, बहुत धैर्य और बड़े उदासीन भाव से लैस रहना होगा। परन्तु योग में मनुष्य को कभी इस बात की परवाह नहीं करनी चाहिये कि लोग क्या सोचते या कहते हैं; यह एक पूर्णतः अनिवार्य प्रारम्भ-बिन्दु है। संसार जो कुछ तुम्हारे विषय में कहता या सोचता है और जिस ढंग से वह तुम्हारे साथ व्यवहार करता है उस सबसे तुम्हें पूर्ण रूप से अछूता रहना चाहिये। लोगों की समझ ऐसी चीज होनी चाहिये जो तुम्हारे लिए बिलकुल निस्सार है और जिससे तुम्हें जरा भी स्पृष्ट नहीं होना चाहिये। यही कारण है कि साधारण तौर पर सब कुछ छोड़ कर एकान्त में चले जाने की अपेक्षा अपने पुराने परिवेश में बने रहना और योग करना बहुत अधिक कठिन होता है; यह बहुत अधिक कठिन होता है, पर हम यहाँ आसान काम करने के लिए नहीं हैं—आसान काम तो हम उन लोगों के लिए छोड़ रहे हैं जो रूपान्तर की कोई बात ही नहीं सोचते।

धन-प्राप्ति के तरीके और उसका सामूहिक उपयोग

यदि किसी ने अनुचित तरीकों से बहुत-सा धन प्राप्त किया हो तो क्या उसमें से कुछ भगवान् के लिए माँगा जा सकता है?

श्रीअरविन्द ने इस प्रश्न का उत्तर दिया है। वे कहते हैं कि धन अपने-आपमें एक निर्वैयक्तिक शक्ति है। जिस तरीके से तुम धन अर्जित करते हो उसका सम्बन्ध व्यक्तिगत रूप से केवल तुम्हारे साथ होता है। यह चीज तुम्हें बहुत हानि पहुँचा सकती है, यह दूसरों को भी हानि पहुँचा सकती है, पर यह किसी भी भाँति धन के स्वरूप में परिवर्तन नहीं लाती जो एक बिलकुल निर्वैयक्तिक शक्ति है : धन का न कोई रंग है, न कोई स्वाद, न कोई मानसिक चेतना। यह एक शक्ति है।

यह ठीक यह कहने के समान है कि किसी सच्चरित्र व्यक्ति के द्वारा साँस से छोड़ी हुई हवा की अपेक्षा किसी दुश्चरित्र द्वारा साँस से छोड़ी हुई हवा अधिक दूषित होती है—मैं ऐसा नहीं समझती। मेरी समझ में परिणाम एक ही होता है। मनुष्य किन्हीं व्यावहारिक कारणों से चोरी किये हुए धन को अस्वीकार कर सकता है, पर वह बात एकदम व्यावहारिक कारणों के लिए है, वह भागवत कारणों की दृष्टि से नहीं है। यह एक बिलकुल मानवीय सोच है। हम किसी व्यावहारिक दृष्टिकोण से कह सकते हैं, "आह! नहीं, तुमने जिस ढंग से यह धन कमाया है वह घृणात्मक है और इसलिए मैं इसे भगवान् को अर्पित करना नहीं चाहता", क्योंकि हमारे अन्दर एक मानवीय चेतना है। परन्तु तुम यदि किसी ऐसे व्यक्ति को लो (आओ, किसी अत्यन्त बुरे व्यक्ति को ले लें) जिसने हत्या की है और हत्या करके धन प्राप्त किया है; यदि अचानक वह भीषण नैतिक संकोच और पश्चात्ताप से आक्रान्त हो जाये और अपने-आपसे कहे, "मुझे इस धन से केवल एक ही काम करना है, इसे वहाँ दे देना है जहां इसका उपयोग सर्वोत्तम कार्य के लिए, अत्यन्त निर्वैयक्तिक ढंग से हो सकता है," मुझे ऐसा लगता है कि यह कार्य अपनी निजी सन्तुष्टि के लिए उसका उपयोग करने की अपेक्षा अधिक वरणीय है। मैंने कहा है कि अन्यायपूर्वक उपार्जित धन ग्रहण करने से रोकने वाले कारण विशुद्धतः व्यावहारिक प्रकार के कारण हो सकते हैं, पर तपस्या की दृष्टि से, आध्यात्मिक प्रकार के और भी गम्भीर कारण हो सकते हैं, (मैं नैतिक प्रकार के नहीं कहना चाहती); किसी से यह कहा जा सकता है, "नहीं, तुम इतने भयंकर तरीके से प्राप्त इस सम्पदा से वस्तुतः श्रेय नहीं प्राप्त कर सकते; बस, तुम यही कर सकते हो कि उसे वापस लौटा दो," उदाहरणार्थ, मनुष्य यह अनुभव कर सकता है कि धन को चाहे जिस काम में लगा देने की अपेक्षा वापस कर देना प्रगति में कहीं अधिक सहायता कर सकता है। हम इस प्रकार वस्तुओं को देख सकते हैं—हम इसके लिए नियम नहीं बना सकते। यही बात है जिसे कहना मैं कभी बन्द नहीं करती: नियम बनाना असम्भव है। प्रत्येक प्रसंग में बात भिन्न प्रकार की होती है। परन्तु तुम्हें यह नहीं समझना चाहिये कि धन प्रभावित होता है; एक पार्थिव शक्ति के रूप में धन उस तरीके से प्रभावित नहीं होता जिससे वह प्राप्त किया जाता है, वह उसे किसी प्रकार प्रभावित नहीं कर सकता। धन वह-का-वही बना रहता है, तुम्हारा नोट वह-का-वही बना रहता है, तुम्हारा सोना वही बना रहता है, और

चूँकि वह अपनी शक्ति अपने अन्दर वहन करता है, इसलिए उसकी शक्ति भी वही बनी रहती है। यह बस उसी व्यक्ति को हानि पहुँचाता है जिसने अधर्म किया है, यह स्पष्ट है।

मन की अवस्था और देने का प्रयोजन

तब यह प्रश्न बना रहता है: मन की किस अवस्था में और किन कारणों से तुम्हारा अधर्मी मित्र अपना धन उस कार्य में लगाना चाहता है जिसे वह दिव्य समझता है? वह सुरक्षा के एक उपाय के रूप में, विवेक-विचार से प्रेरित होकर या अपने मन की शान्ति बनाये रखने के लिए ऐसा करना चाहता है? स्पष्ट ही यह कोई बहुत अच्छा हेतु नहीं है और इसे प्रोत्साहित नहीं किया जा सकता, परन्तु उसने जो कुछ किया है उसके लिए यदि वह एक प्रकार का पश्चात्ताप और खेद अनुभव करता है और उसमें यह भावना है कि बस एक ही चीज करने-लायक है और वह यह है कि उसने जो कुछ अन्यायपूर्वक उपार्जित किया है उसको वह अपने पास न रखे और यथासम्भव सार्वजनिक हित के लिए उसका उपयोग करे, तब उसके विरुद्ध कहने के लिए कुछ नहीं रह जाता। इसे किसी सामान्य नियम के द्वारा निश्चित नहीं किया जा सकता—यह निर्भर करता है उस विशेष प्रसंग पर। हाँ, मैंने यदि अच्छी तरह समझा है कि तुम्हारा क्या मतलब है; यदि हम यह जानते हैं कि किसी मनुष्य ने अत्यन्त अकथनीय साधनों से धन कमाया है तो स्पष्ट ही, उसके पास जाकर किसी भागवत कार्य के लिए धन **माँगना** अच्छा नहीं होगा, क्योंकि उसका अर्थ धन कमाने के उसके तरीके को पुनः "प्रतिष्ठित" करने के जैसा होगा। हम उससे माँग नहीं सकते, यह असम्भव है। यदि, अपने-आप, किसी कारणवश, वह उसे देता है, तो उसे इन्कार करने का कोई कारण नहीं है। परन्तु उसके पास जाकर उससे धन माँगना एकदम असम्भव है, क्योंकि यह कार्य ऐसा होगा मानों हमने उसके धन कमाने के ढंग को न्यायसंगत सिद्ध कर दिया। इस बात से बहुत अन्तर पड़ जाता है।

और सामान्य तौर पर, ऐसे प्रसंगों में, जो लोग स्वयं जाकर दुष्ट लोगों से धन माँगते हैं वे डराने-धमकाने वाले उपायों का प्रयोग करते हैं: वे उन्हें डराते हैं, भौतिक रूप में नहीं बल्कि उनके भावी जीवन के विषय में, उन पर क्या बीतेगी इस विषय में, वे उन्हें आतंकित करते हैं। यह बहुत अच्छा नहीं है। ये ऐसी पद्धतियाँ हैं जिनका व्यवहार नहीं करना चाहिये।...

भागवत् कार्य के लिए धन को पुनः जीतना

श्रीमाँ के लिए धन को पुनः कैसे जीता जा सकता है?

आह!... यहाँ पर एक संकेत है। ये तीन वस्तुएँ एक-दूसरी पर निर्भर हैं (श्रीअरविन्द यहाँ कहते हैं) : आधिपत्य, धन और काम-वासना। मैं समझती हूँ कि ये तीनों परस्पराश्रित हैं और इनमें से किसी एक को सुनिश्चित रूप में जीतने के लिए इन तीनों को जीतना होगा—जब तुम एक को जीतना चाहते हो तो तुम्हें दूसरी दोनों को भी जीतना होगा। जब तक मनुष्य इन तीनों चीजों को—आधिपत्य पाने की कामना, धन की कामना और काम-तृप्ति की वासना को—वश में नहीं कर लेता, तब तक वह सचमुच इनमें से किसी को दृढ़तापूर्वक और सुनिश्चित रूप में अधिकृत नहीं कर सकता। सच पूछा जाये तो संसार में, जैसा कि वह आजकल है, धन को इतना अधिक महत्त्व जो चीज देती है वह उतना अधिक स्वयं धन नहीं है; हम उन थोड़े-से मूर्खों की बात छोड़ दें जो धन का ढेर लगाते हैं और इसलिए खुश होते हैं कि वे उसका ढेर लगा सकते और उसे गिन सकते हैं; साधारणतया लोग धन से प्राप्त सुख-सन्तोषों के लिए ही धन की इच्छा करते और उसे प्राप्त करते हैं। इनमें लगभग एक प्रकार का पारस्परिक सम्बन्ध है। इन तीनों चीजों में से प्रत्येक का कामनाओं के जगत् में न केवल अपना निजी मूल्य है बल्कि वह अन्य दोनों पर टिकी होती है। मैंने तुमसे अपने उस अन्तर्दर्शन का वर्णन किया है, उस विराट् काले सर्प का जो संसार के धनागार पर, पार्थिव धन-सम्पत्ति पर पहरा दे रहा था—उसने कामावेग पर प्रभुत्व प्राप्त करने की माँग की थी। कारण, कुछ सिद्धान्तों के अनुसार, आधिपत्य की यथार्थ आवश्यकता इसी तृप्ति में जाकर समाप्त हो जाती है, और यदि कोई उस पर संयम पा जाये, यदि उसका मानव चेतना से उन्मूलन कर दे तो आधिपत्य की आवश्यकता तथा धन की कामना बहुत कुछ अपने-आप विलीन हो जायेगी। स्पष्ट ही, पार्थिव मानव जीवन की ये ही तीन महान् बाधाएँ हैं और जब तक इन पर विजय नहीं मिल जाती तब तक मानवजाति के परिवर्तित होने की शायद ही कोई सम्भावना हो।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ४, पृ. ४४९-५७

दरिद्रता और समृद्धि

महालक्ष्मी के विषय में श्रीअरविन्द यहाँ कहते हैं: "वे सब चीजें जो दीन-हीन होती हैं... उनके आगमन को रोकती हैं"? —'माता' पुस्तक से

हाँ, वह सब जो दरिद्र है, उदारता से रहित, उत्साह की प्रखरता से शून्य, प्राचुर्य से रहित, आन्तरिक समृद्धि से शून्य, जो कुछ सूखा, ठण्डा, गुड़ी-मुड़ी होता है वह सब महालक्ष्मी के आगमन को रोकता है। यहाँ प्रश्न स्थूल धन का नहीं है, समझे! एक अत्यन्त धनी व्यक्ति भी महालक्ष्मी की दृष्टि में भयानक रूप से दरिद्र हो सकता है। और एक बहुत दरिद्र व्यक्ति बहुत धनी हो सकता है यदि उसका हृदय उदार हो।

"दरिद्र मनुष्य" का ठीक-ठीक अर्थ क्या होता है?

दरिद्र मनुष्य वह व्यक्ति है जिसमें कोई गुण न हो, कोई शक्ति, कोई बल-सामर्थ्य कोई उदार-भाव न हो। वह एक दुःखी, अभागा मनुष्य भी होता है। परन्तु कोई व्यक्ति केवल तभी दुःखी होता है जब वह उदार नहीं होता—यदि किसी के अन्दर ऐसा उदार स्वभाव हो जो बिना हिसाब लगाये अपने-आपको दे देता हो, तो वह कभी दुःखी नहीं होता। जो लोग स्वयं अपने-आप पर ही केन्द्रित होते हैं और जो सर्वदा अपनी ओर ही वस्तुओं को खींचना चाहते हैं, जो चीजों को और जगत् को अपने ही नजरिये से देखते हैं—केवल वे ही लोग दुःखी होते हैं। परन्तु जब कोई अपने-आपको उदारतापूर्वक, हिसाब लगाये बिना, दे देता है तो वह कभी दुःखी नहीं होता—कभी नहीं। जो व्यक्ति लेना चाहता है बस वही दुःखी होता है; जो अपने-आपको दे देता है वह कभी वैसा नहीं होता।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ४, पृ. ४८५-८६

महत्त्वाकांक्षा और परोपकार

अगर ये ही लोग जो विद्यालयों के लिए पैसा देने को तैयार होते हैं, उनसे कहा जाये कि कोई भगवान् का काम है जिसे भगवान् ने अमुक तरीके से करने का निश्चय किया है, और यदि उन्हें विश्वास भी हो कि यह सचमुच भगवान् का कार्य है, फिर भी वे कुछ भी देने से इन्कार करते हैं, क्योंकि यह माना हुआ परोपकार का काम नहीं है—यह करके कुछ अच्छा करने का सन्तोष नहीं होता! इसी को मैं महत्त्वाकांक्षा कहती हूँ। मेरे सामने ऐसे उदाहरण आये

हैं जिनमें लोगों ने अस्पताल खोलने के लिए लाखों रुपये दिये हैं क्योंकि इससे उन्हें सन्तोष हुआ कि उन्होंने कोई बड़ा, उदारतापूर्ण, उदात्त काम किया है।

वे अपने-आपको महिमान्वित करते हैं। मैं इसे ही महत्त्वाकांक्षा कहती हूँ।

मैं एक विनोदप्रिय व्यक्ति को जानती थी जो कहा करता था : "भगवान् का राज्य बहुत जल्दी नहीं आयेगा क्योंकि तब इन बेचारे परोपकारियों के लिए क्या बच रहेगा? अगर मानवजाति दुःख न भोगती रहे तो बेचारे परोपकारी लोग बेकार हो जायेंगे।" इसमें से निकलना मुश्किल है। फिर भी यह तथ्य है कि दुनिया इस स्थिति में से तब तक बाहर नहीं निकल सकती जब तक कि वह अपने-आपको भगवान् को न सौंप दे। सभी सद्गुण—तुम उनकी चाहे जितनी महिमा गाओ—तुम्हारे आत्मसन्तोष को, यानी, तुम्हारे अहं को बढ़ाते हैं। वे तुम्हें सचमुच भगवान् के बारे में सचेतन होने में सहायता नहीं देते। दुनिया के उदार और बुद्धिमान् लोगों को बदलना सबसे कठिन होता है। वे अपने जीवन से बहुत सन्तुष्ट होते हैं। एक गरीब आदमी जिसने जीवन में सब प्रकार की बेवकूफियाँ की हैं, तुरन्त दुःखी हो उठता है और कहता है : "मैं कुछ नहीं हूँ, मैं कुछ नहीं कर सकता। मुझे तुम जो बनाना चाहो बना लो।" यह व्यक्ति ज्यादा ठीक है और यह उस व्यक्ति की अपेक्षा भगवान् के बहुत ज्यादा नजदीक है जो बुद्धिमान् है तथा अपनी बुद्धिमत्ता और दर्प से भरा है। वह अपने-आपको वैसा ही देखता है जैसा कि वह है। उदार और बुद्धिमान् व्यक्ति, जिसने मानवजाति के लिए बहुत कुछ किया है, अपने-आपसे इतना अधिक सन्तुष्ट होता है कि उसे स्वयं को बदलने का जरा भी ख्याल नहीं आता। प्रायः इसी तरह के लोग कहा करते हैं : "वास्तव में, यदि मैंने संसार रचा होता तो मैं उसे ऐसा न बनाता, मैं इससे बहुत ज्यादा अच्छा बनाता," और वे उस चीज को ठीक करने की कोशिश करते हैं जिसे भगवान् ने बुरी तरह बनाया है! उनके चित्र के अनुसार, यह सब मूर्खतापूर्ण और व्यर्थ है...। इस मनोभाव के साथ तुम भगवान् के नहीं हो सकते। तुम्हारे और भगवान् के बीच हमेशा अपनी बौद्धिक श्रेष्ठता का सचेतन अहंकार रहेगा जो भगवान् का मूल्य आँकता है और यह विश्वास करता है कि वह कभी गलत नहीं हो सकता। उन्हें यह विश्वास होता है कि अगर उन्होंने जगत् बनाया होता तो वे ये सब मूर्खताएँ न करते जो भगवान् कर बैठे हैं! और यह सब अभिमान, दर्प और आत्म-वञ्चना से आता है, और जो लोग मानवजाति की सेवा करना चाहते हैं उनमें इसी का ही बीज होता है।

मानवता की मदद करना अहंकार का चिह्न है

तुम लाखों अस्पताल खोल सकते हो, इससे लोग रोगी होने से न बचेंगे। इसके विपरीत, उन्हें बीमार होने के लिए हर प्रकार की सुविधा मिलेगी, प्रोत्साहन मिलेगा। हम इस प्रकार के विचारों में डूबे हुए हैं। इससे तुम्हारे अन्तःकरण को आराम मिलता है : "मैं संसार में आया हूँ, मुझे औरों की मदद करनी चाहिये।" तुम अपने-आपसे कहते हो : "मैं कितना निःस्वार्थी हूँ! मैं मानवजाति की सहायता करने जा रहा हूँ।" यह सब केवल अहंकार है, और कुछ नहीं। वास्तव में, सबसे पहली मानव-सत्ता जिसके साथ तुम्हारा सम्बन्ध है, तुम स्वयं हो। तुम दुःख कम करना चाहते हो, लेकिन जब तक तुम दुःख सहने की क्षमता को प्रसन्न रहने की निश्चितता में न बदल दो तब तक संसार कभी न बदलेगा। वह हमेशा वह-का-वही रहेगा। हम एक चक्र में घूमते रहेंगे। एक संस्कृति के बाद दूसरी संस्कृति आती है, एक विपदा के बाद दूसरी विपदा आती है, लेकिन चीज नहीं बदलती क्योंकि कोई चीज गुम है, कोई चीज वहाँ नहीं है। वह है चेतना। बस, इतनी-सी बात है।

कम-से-कम यह मेरी राय है। इसका जो भी मूल्य हो, पर मैं तुम्हें राय दे रही हूँ। अगर तुम अस्पताल, विद्यालय आदि बनाना चाहते हो तो बना सकते हो। यदि इससे तुम सुखी होते हो तो तुम्हारे लिए बहुत अच्छा है। इसका बहुत महत्त्व नहीं है। जब मैंने 'मोंस्य वैंसाँ' फ़िल्म देखी तो मुझे बहुत रस आया। उन्होंने देखा कि वे दस गरीबों को खिलाते थे तो हजार आ खड़े होते थे। कोलबर्ट ने उनसे कहा : "ऐसा लगता है कि आप उनको, गरीबों को, खिला-खिला कर बढ़ाते जाते हैं!" और यह बात पूरी तरह गलत नहीं है। फिर भी! यदि तुम्हारी नियति यही है कि तुम विद्यालयों की स्थापना करो और शिक्षा दो, रोगियों की देखभाल करो और अस्पताल खोलो, तो यह अच्छा है। यही करो। लेकिन इसे बहुत गम्भीरता से न लो। यह एक आडम्बरपूर्ण चीज है जिसे तुम स्वयं अपनी प्रसन्नता के लिए कर रहे हो। यूँ कहो : "मैं यह काम इसलिए कर रहा हूँ क्योंकि इससे मुझे प्रसन्नता होती है।" लेकिन योग की बात मत करो। यह तुम योग नहीं कर रहे। तुम समझते हो कि तुम कोई बड़ा काम कर रहे हो, बस इतना ही, और यह तुम्हारे निजी सन्तोष के लिए है।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ५, पृ. १५-१८

धन और भागवत कार्य

भागवत कार्य के लिए धन की आवश्यकता

अधिक-से-अधिक सद्भावना यह है कि धन ऐसे कार्यों में दिया जाये जिन्हें तुम भली-भाँति समझ सकते हो (और इसे समझना भी आसान है), जैसे अस्पताल बनाना या शिशु-सदन खोलना। ये सब सद्भावना के ऐसे काम हैं जिन्हें व्यक्ति अच्छी तरह समझ सकते हैं। लेकिन अगर उनसे कहा जाये कि हम मानव चेतना में परिवर्तन करना चाहते हैं, हम एक नये संसार का निर्माण करना चाहते हैं तो, ओह! उनका पहला उत्तर होगा: "क्षमा कीजिये! भगवान् की बात न कीजिये। अगर भगवान् काम कर रहे हैं तो स्वयं भगवान् ही उसके लिए साधन भी देंगे और आपको हमारी सहायता की कोई जरूरत नहीं।" मैंने लोगों को यह कहते सुना है: "अगर आप धरती पर भगवान् का प्रतिनिधित्व कर रही हैं तो आप जो चाहें कर सकती हैं; हमें आपको कुछ भी देने की जरूरत नहीं है।" और तुममें से कितने इस विचार से (या इस विचार के प्रभाव से) मुक्त हैं कि भगवान् सर्वशक्तिमान् हैं इसलिए भगवान् जो चाहें कर सकते हैं?

यह पहली युक्ति है, यह पहला सिद्धान्त है। भगवान् सर्वशक्तिमान् हैं, वे जो चाहें कर सकते हैं; इसलिए उन्हें किसी की मदद की जरूरत नहीं। और अगर तुम इस विचार को काफी आगे ले जाओ तो देखोगे कि अगर सचमुच भगवान् इस जगत् में सर्वशक्तिमान् हैं और जो चाहते हैं, हमेशा वही करते हैं, तो मैं कहती हूँ कि वे विश्व-भर में सबसे बड़े दानव हैं! क्योंकि जो सर्वशक्तिमान् है और इस तरह की दुनिया बनाता है जैसी कि यह है, और कष्ट पाते हुए दुःखी लोगों को देख-देख कर मुस्कुराता है और इसे ठीक समझता है, उसे मैं दानव ही कहूँगी। जब मैं पाँच वर्ष की थी तो ऐसी बातें ही सोचा करती थी। मैं अपने-आपसे कहा करती थी: "नहीं, यह सम्भव नहीं है, यहाँ जो सिखाया जाता है वह सत्य नहीं है!" तुम्हें जरा ज्यादा दार्शनिक मन प्राप्त है इसलिए मैं तुम्हें सिखाऊँगी कि इस कठिनाई में से कैसे बाहर निकला जाये। लेकिन सबसे पहले तुम्हें यह समझ लेना चाहिये कि यह विचार बचकाना विचार है। मैं तुम्हारी सामान्य बुद्धि से अपील करती हूँ। तुम अपने भगवान् को एक व्यक्ति बना लेते

हो क्योंकि इस तरह तुम उन्हें ज्यादा अच्छी तरह समझ सकते हो। तुम उन्हें व्यक्ति बनाते हो। फिर इस व्यक्ति ने किसी चीज का संगठन किया है (पृथ्वी, यह शायद बहुत बड़ी है, इसे समझना कठिन है—कोई और चीज ले लो)। अब भगवान् ने इस चीज का संगठन अपनी मरजी के मुताबिक सब कुछ कर सकने की पूरी शक्ति के साथ किया है। और इस चीज में —जिसे उन्होंने अपनी इच्छा के अनुसार सब कुछ कर सकने की शक्ति के साथ बनाया है—अज्ञान, मूर्खता, दुर्भावना, भय, ईर्ष्या, घमण्ड, धूर्तता तथा तकलीफें, बीमारी, सब तरह के दर्द, दुःख आदि हैं; और लोगों की एक श्रेणी ऐसी है जो यह नहीं कह सकती कि उसे सारे दिन में कुछ मिनटों से अधिक सुख मिला होगा, और बाकी समय एक उदासीन दशा रहती है—एक मुर्दे-जैसी—और तुम इसे सृष्टि कहते हो! ...मैं तो इसे नरक-जैसी चीज कहती हूँ! और जो ऐसी चीज को जान-बूझकर बनाये और सिर्फ बनाये ही नहीं, बल्कि उसे देख कर कहे : "ओह! यह बहुत अच्छी है," जैसा कि कुछ धार्मिक पुस्तकों में लिखा है कि जब भगवान् ने सृष्टि की रचना कर ली, जैसी कि वह है, तो सातवें दिन उसे देख कर वे बहुत प्रसन्न हुए और अपने काम से सन्तुष्ट होकर आराम करने लगे...। हाँ, यह तो हर्गिज नहीं! मैं ऐसे को भगवान् नहीं कहूँगी।...

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ५, पृ. १७८-७९

भगवान् कपटी लोगों को चीजें क्यों देते हैं?

माँ, ऐसे लोगों को शक्ति क्यों मिलती है, जब कि भगवान् जानते हैं कि वे सच्चे नहीं हैं?

सुनो, मेरे बच्चे, भगवान् अपना कार्य ऐसी मानवीय धारणाओं के अनुसार नहीं करते। हमेशा के लिए, तुम्हें यह चीज अपने दिमाग में बिठा लेनी चाहिये। हो सकता है कि वे ऐसी चीजें करें जिनका हमारी दृष्टि में कोई कारण न हो। लेकिन जो भी हो, अगर उनके पास कारण हैं भी, तो वे मानवीय कारणों से भिन्न हैं, और **निश्चय ही**, उनकी उस तरह की न्यायदृष्टि **नहीं** है जैसी मनुष्य समझते हैं।

उदाहरण के लिए, तुम उस मनुष्य की बहुत अच्छी तरह कल्पना कर

सकते हो जिसमें धन-दौलत की लालसा है और जो धन पाने के लिए लोगों को धोखा देने की कोशिश करता है... तुम्हारे न्याय की दृष्टि से, इस मनुष्य से उसका सारा धन छीन लेना चाहिये, उसे गरीब बना देना चाहिये। हम देखते हैं कि सामान्यतः बात इससे उलटी होती है। लेकिन निश्चय ही, यह सब केवल बाहर से ऐसा दीखता है। बाहरी चीजों के पीछे, कोई और चीज होती है...। दूसरी सम्भावनाओं के बदले वह इस चीज को पाता है। सम्भव है कि उसके पास धन हो, लेकिन उसमें अन्तःकरण न रहे। और, वस्तुतः, जैसा कि अक्सर होता है, जब उसे वह धन मिल जाता है जिसकी उसने इच्छा की थी, तब वह सुखी नहीं रहता...। और आदमी के पास जितना अधिक धन होता है, साधारणतः वह उतना ही कम सुखी रहता है! वह उस धन से उत्पीड़ित होता है जिसे उसने पाया है, समझे। चीजों का मूल्यांकन बाहरी सफलता या पराजय के आभास से नहीं करना चाहिये। हम कह सकते हैं—और सामान्यतः लगभग हमेशा ही ऐसा होता है—कि भगवान् हमें वाञ्छित चीज दे देते हैं, और सभी पाठों में से यही श्रेष्ठ है! क्योंकि, अगर तुम्हारी कामना निश्चेतन, अन्धकारपूर्ण, अहम्मयी है तो तुम अपने अन्दर निश्चेतना, अन्धकार और अहम्मन्यता को बढ़ाते हो; यानी, वह प्राप्ति तुम्हें सत्य से, चेतना और सुख से अधिकाधिक दूर हटा देती है। वह तुम्हें भगवान् से बहुत दूर ले जाती है। और, स्वाभाविक है कि भगवान् के लिए एक ही चीज सत्य है और वह है भागवत 'चेतना', भगवान् के साथ 'ऐक्य'। और जब भी तुम भौतिक चीजों को सामने रखते हो, तो तुम अधिकाधिक भौतिकवादी बनते जाते हो और पूरी सफलता से अधिकाधिक दूर होते जाते हो।

लेकिन 'सत्य' के लिए वह दूसरी सफलता एक भयानक पराजय है...। तुमने सत्य के बदले मिथ्यात्व को लिया है!

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ६, पृ. २७१-७२

ऐसे कंजूस लोग भी हैं जो अपना बक्सा सोने की सिलों से भरा रखते हैं और जिसका वे कभी उपयोग नहीं करते। सोना सड़ता नहीं है, परन्तु नैतिक दृष्टि से वह सचमुच सड़ता है, क्योंकि जिस चीज का आदान-प्रदान न हो वह रुग्ण हो जाती है। —*श्रीमाँ*

भक्ति का दिखावा

माँ, कुछ लोग हैं जो यहाँ आते हैं, जिनके पास पैसा है और जो बहुत भक्त हैं, जो अपनी भक्ति प्रदर्शित करते हैं, पर जब पैसे का प्रश्न उपस्थित होता है, वे मोलतोल करने लगते हैं...।

किस ढंग से? जो कुछ सम्भव हो वह सब भगवान् से लेकर?

... परन्तु जब पैसे का प्रश्न सामने आता है, वे हिसाब करने लगते हैं।

मैं कहती हूँ, मैंने उत्तर दे दिया है, बात ऐसी ही है। वे भगवान् से जो कुछ भी लिया जा सके, सभी प्रकार के गुण, सभी क्षमताएँ, साथ ही सभी सुविधाएँ, सभी प्रकार के आराम, प्रत्येक चीज, और कभी-कभी तो शक्तियाँ आदि भी, लेने की भावना के साथ आते हैं। वे लेने के लिए आते हैं, देने के लिए नहीं। और उनका भक्ति का बाहरी दिखावा एक चोगा मात्र होता है जिसे वे लेने की, ग्रहण करने की अपनी इच्छा के ऊपर डाले रखते हैं। इसमें बहुत कुछ छिपा रहता है : अपनी आत्मा का उद्धार करने, आध्यात्मिक अनुभव प्राप्त करने, शक्तियाँ प्राप्त करने से यह आरम्भ होता है और समाप्त होता है एक छोटे-से शान्त जीवन के साथ, जो सुखपूर्ण—कम या अधिक सुखपूर्ण हो, कम-से-कम अल्प सुखों से तो युक्त हो—और चिन्ताओं से रहित, झंझटों से बरी हो, जीवन की उथल-पुथल से बहुत दूर हो। तो ऐसा है। इसमें बहुत कुछ आ जाता है। परन्तु वे यदि देते हैं तो यह एक प्रकार का सौदा होता है; वे जानते हैं कि वह सब लेने के लिए अच्छा होगा कि थोड़ी-सी कोई चीज दे भी दी जाये, अन्यथा वे उसे नहीं पायेंगे। अतएव वे बहुत भक्तिपरायण होने का दिखावा करते हैं। परन्तु यह केवल एक बाहरी रूप होता है, क्योंकि इसमें सच्चाई नहीं होती।

उनके लिए दुर्भाग्य की बात यह होती है कि इस सबसे कोई धोखा नहीं खाता। उसे बर्दाश्त किया जा सकता है; परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि उससे कोई धोखे में पड़ता है। मोलतोल सर्वत्र है, सत्ता के सभी भागों में है। सर्वदा ही लेन-देन का व्यापार चलता रहता है, उच्चतम आध्यात्मिक अनुभूतियों से लेकर क्षुद्रतम सामान्य भौतिक आवश्यकताओं तक। लाखों-करोड़ों में एक भी व्यक्ति नहीं जो मोलतोल के बिना देता हो।

भगवान् को धन अर्पण करना

परन्तु धनी लोग यदि साधारण जीवन में अपना धन भगवान् को देना चाहें, और भगवान् उनके सामने न हों तो फिर वे किसको दें? वे नहीं जानते कि वे अपना धन कहाँ लगायें!

हाँ, परन्तु तब यह प्रश्न ही नहीं उठता। यदि उन्हें अन्दर या बाहर कहीं भी भगवान् का साक्षात्कार न प्राप्त हुआ हो तो फिर इस बात का प्रश्न ही नहीं उपस्थित होता। उनसे उस व्यक्ति को कुछ देने के लिए नहीं कहा जाता जिसे वे जानते ही नहीं। यदि उन्होंने अपने अन्दर भगवान् को देखा है, तो फिर उनके पास जो कुछ है उसका उपयोग उन्हें भगवान् द्वारा प्राप्त संकेत के अनुसार ही करना चाहिये; और जो संकेत उन्हें प्राप्त होते हैं उनका यदि वे पूरी सच्चाई के साथ और ठीक-ठीक अनुसरण करें तो बस उनसे इतनी ही माँग की जा सकती है। परन्तु जब तक वह मुहूर्त नहीं आता तब तक किसी से कुछ भी नहीं माँगा जा सकता। माँगना तभी शुरू होता है जब कोई आकर कहता है : "यह रहा मैं, मैं अपने-आपको भगवान् के चरणों में निवेदित करना चाहता हूँ।" तब स्थिति बिलकुल ठीक होती है, उसी क्षण से माँगा जाता है; परन्तु उससे पहले नहीं। उससे पूर्व, यदि चलते-चलते तुम अपनी जेब से एक पैसा निकाल लो और वहाँ रख दो तो यह बहुत अच्छा है; तुमने वह कर दिया जिसे तुमने करना उचित समझा और बात समाप्त हो गयी; किसी ने तुमसे कुछ देने को बिलकुल नहीं कहा। अपने-आपको स्वीकार किये जाने के लिए भगवान् से प्रार्थना करना और फिर, अपना सद्भाव तो प्रदर्शित करना पर अपनी जीवन-धारा में किसी भी प्रकार के परिवर्तन की जरा भी इच्छा न रखना, इनके बीच बहुत अधिक अन्तर है।

जो लोग साधारण जीवन यापन करते हैं, हाँ, वे यदि सदिच्छा का भाव दिखाते हैं तो यह उनके लिए बहुत अच्छा है, यह उनके लिए भावी जीवनों की पूर्वावस्था का निर्माण करता है। परन्तु जिस क्षण मनुष्य कहता है : "हाँ, अब मैं जानता हूँ कि केवल एक ही वस्तु है जो मेरे लिए महत्त्व रखती है, वह है दिव्य जीवन, और मैं दिव्य जीवन यापन करना चाहता हूँ"—बस, उसी क्षण से उससे माँगा जाता है, उससे पहले नहीं।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ८, पृ. २०-२१, १९-२०

सूत्र

तुम जो सम्पदा अपने अधिकार में रखते हो उसकी अपेक्षा जो सम्पदा देते हो उससे अधिक धनवान् बनते हो।

*

सच्ची सम्पदा है ठीक तरह से खर्च करना।

तुम सचमुच धनवान् तब बनते हो जब अपने धन को अच्छे-से-अच्छे तरीके से खर्च करते हो। फरवरी १९६२

*

निःस्वार्थ समृद्धि : जो उसे प्रचुर मात्रा में पाता है, वह जैसे ही पाता है वैसे ही सब दे देता है।

*

उदारता अपने-आपको देती है और बिना मोल-भाव के देती है।

*

अपने विचार में **आध्यात्मिक शक्ति** और धन को कभी मत मिलाओ, क्योंकि यह सीधा विध्वंस की ओर ले जाता है।

*

मिथ्याभिमान से दिया गया उपहार न तो देने वाले के लिए लाभदायक होता है न पाने वाले के लिए।

*

... दी हुई चीज की अपेक्षा उपहार के साथ जाने वाले विचार, भावना और शक्ति बहुत अधिक मूल्यवान् और महत्त्वपूर्ण होते हैं।

*

धनवान को भगवान् धन देते हैं, लेकिन गरीब के लिए वे अपने-आपको दे देते हैं।

सब कुछ इस पर निर्भर है कि गरीब धन को ज्यादा मूल्य देता है या भगवान् को।

२२ अगस्त १९६४

*

धनाढ्यों और व्यापारियों को भविष्य के साथ सहयोग करने की सम्भावना प्रदान की गयी है, लेकिन उनमें से अधिकतर लोग इन्कार करते हैं। उन्हें

विश्वास है कि धन की शक्ति भविष्य की शक्ति से अधिक प्रबल है।
लेकिन भविष्य उन्हें अपनी अदम्य शक्ति से कुचल देगा।

*

इस जड़-भौतिक जगत् में मनुष्यों के लिए धन भगवान् की इच्छा से अधिक पवित्र है।

१२ मार्च १९६५

*

धन के लिए लोभ : अपने अन्तःकरण को कम करने और अपनी प्रकृति को संकीर्ण बनाने का सबसे निश्चित तरीका।

*

मैं धन पर ब्याज लेने के पक्ष में नहीं हूँ।

*

मैंने थोड़ी सट्टेबाजी की, लेकिन कंगाल होकर निकला। कुछ समय के लिए मैंने जो सट्टा किया उसने मेरी जेब में काफी बड़ा छेद कर दिया। काश! मैं उसमें न पड़ा होता। क्या आप सचमुच उसके एकदम विरुद्ध हैं?

तुम्हें यह पता होना चाहिये कि मैं सट्टेबाजी का बिलकुल समर्थन नहीं करती—लेकिन जो हो गया सो हो गया।

१७ दिसम्बर १९३९

*

क्या चेतना के सुधार से व्यक्ति की आर्थिक स्थिति सुस्थिर हो जाती है?

यदि "चेतना के सुधार" का मतलब है बढ़ी हुई, विशालतर चेतना, उसकी अधिक अच्छी व्यवस्था तो परिणामस्वरूप बाहरी चीजों पर, जिनमें "आर्थिक स्थिति" भी आ जाती है, स्वाभाविक रूप से ज्यादा अच्छा नियन्त्रण होगा। लेकिन जब "ज्यादा अच्छी चेतना" होगी तो स्वाभाविक है कि व्यक्ति अपनी आर्थिक स्थिति के जैसी चीजों के साथ कम व्यस्त रहेगा।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १५, पृ. ५४-५८

धन एक वैश्व शक्ति का प्रत्यक्ष चिह्न है। यह शक्ति धरती पर प्रकट होकर प्राण और जड़-स्तरों पर कार्य करती है और बाहरी जीवन की पूर्णता के लिए इसका होना अनिवार्य है। अपने मूल और वास्तविक कर्म की दृष्टि से यह भगवान् की शक्ति है। परन्तु भगवान् की अन्य शक्तियों की भाँति यह शक्ति भी यहाँ औरों को सौंप दी गयी है और निम्नतर प्रकृति के अज्ञान में इसका अपहरण अहंकार के उपयोग के लिए हो सकता है या आसुरी प्रभावों की पकड़ में आकर उनके उद्देश्यों के लिए यह विकृत की जा सकती है। वास्तव में यह उन तीन शक्तियों —सत्ता, धन, काम-वासना—में से एक है जिनके लिए मानव-अहंकार और असुरों को सबसे अधिक आकर्षण होता है और जिन लोगों के पास ये हैं वे अधिकतर इनके अनधिकारी हैं और इनका दुरुपयोग ही करते हैं। धन को पाने वाले या रखने वाले अधिकतर उसके स्वामी नहीं, दास ही होते हैं। बहुत ही कम लोग उस विकृतिकारक प्रभाव से पूरी तरह बच पाते हैं जिसकी छाप लम्बे समय से असुरों के हाथों में रहने और उनके द्वारा इसका दुरुपयोग होने से इस पर लग गयी है। इसी कारण अधिकतर आध्यात्मिक साधना-मार्ग पूर्ण आत्म-संयम और अनासक्ति पर तथा धन के सारे बन्धनों और उसे पाने की सारी व्यक्तिगत और अहंकारयुक्त अभिलाषा के त्याग पर बल देते हैं। यहाँ तक कि कुछ तो धन और वैभव पर प्रतिबन्ध लगा देते हैं और जीवन की दरिद्रता तथा रिक्तता को ही एकमात्र आध्यात्मिक अवस्था घोषित कर देते हैं। किन्तु यह एक भूल है जो उस शक्ति को विरोधी सत्ताओं के हाथों में छोड़ देती है। यह भगवान् की है और इसे भगवान् के लिए पुनः जीतना है और भागवत जीवन के लिए भागवत भाव से इसका उपयोग करना है—यही साधक के लिए अतिमानसिक मार्ग है।

'माता' पुस्तक से, पृ. १४-१६ *—श्रीअरविन्द*

'पुरोधा' :

दैनन्दिनी

मार्च

१. कठिनाइयों का पूर्वानुमान करना उन्हें आने में सहायता देना है।

२. पूर्णता वह सब है जो हम अपनी उच्चतम अभीप्सा में होना चाहते हैं। पूर्णता की प्यास : सतत और बहुविध प्रयास।

३. ऐसी कोई चीज नहीं जो अन्ततः भगवान् की सम्पूर्ण विजय की ओर ले जाने का यन्त्र न हो।

४. भागवत विजय सभी विघ्न-बाधाओं को पार कर लेगी।

५. हम सारे अज्ञान से मुक्त होने के लिए, अपने अहंकार से मुक्त होने के लिए अभीप्सा करते हैं।

६. जो व्यक्ति जगत् के प्रलोभनों के बीच रहते हुए भी पूर्णता प्राप्त करता है, वही सच्चा वीर है।

७. तुम क्या करते हो इससे नहीं बल्कि किस भावना से करते हो इससे कर्मयोग होता है।

८. हमेशा पूरी सच्चाई और निष्कपटता के साथ अपना अच्छे-से-अच्छा करो और अपना सर्वोत्तम होओ।

९. सभी में, उच्चतम चेतना को जीवन का शासक होना चाहिये।

१०. भविष्य उनके हाथों में है जो प्रगति करना चाहते हैं।

११. जो अपने हृदय के अन्दर सुनना चाहता है उससे सारी सृष्टि भगवान् की बातें करती है।

१२. हमेशा विरोधी शक्तियों के बारे में सोचते रहना और उनसे डरना बहुत भयानक दुर्बलता है।

१३. तुम उसी धन से धनवान् बनते हो जिसे तुम भागवत कार्य के अर्पण करते हो।

१४. उदारता अपने-आपको देती है और बिना मोल-भाव के देती है।

१५. **धन के लिए लोभ** : अपने अन्तःकरण को कम करने और अपनी प्रकृति को संकीर्ण बनाने का सबसे निश्चित तरीका है।

१६. इस जड़-भौतिक जगत् में मनुष्यों के लिए धन भगवान् की इच्छा से

अधिक पवित्र है।

१७. हम भगवान् के प्रति जितने अधिक समर्पित होंगे उतने अधिक उन्हें समझ सकेंगे।

१८. हम भगवान् के प्रति जितने अधिक कृतज्ञ होंगे उतने अधिक प्रसन्न रहेंगे।

१९. भगवान् जो दें उसे सर्वदा प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार करो।

२०. भगवान् में हमारा विश्वास बाह्य अवस्थाओं पर आधारित नहीं होना चाहिये।

२१. जो लोग सचमुच सशक्त, बलशाली होते हैं वे सर्वदा ही बहुत शान्त-स्थिर रहते हैं। दुर्बल लोग ही उत्तेजित रहते हैं।

२२. अत्यधिक जल्दबाजी हमेशा खतरनाक होती है।

२३. सच्ची स्थिरता एक बहुत बड़ी शक्ति है, एक बहुत बड़ा बल है।

२४. यह वर्ष तुम्हारे लिए पूर्ण उद्घाटन और सीमाओं को तोड़ने का वर्ष हो।

२५. हे प्रभो, मेरे अन्दर सब कुछ तेरी सेवा में रहे।

२६. हे प्रभो, बड़ी विनय के साथ मैं प्रार्थना करता हूँ कि मैं अपने प्रयास के शिखर पर रहूँ, कि मेरे अन्दर कोई भी चीज सचेतन या अचेतन रूप से, मेरे पवित्र उद्देश्य की सेवा करने में कोताही करके तेरे साथ विश्वासघात न करे।

गम्भीर भक्ति के साथ मैं तुझे प्रणाम करता हूँ।

२७. मुझे निश्चल विश्वास, शान्त बल, उद्दीप्त श्रद्धा और भक्ति प्रदान कर।

२८. हमारी सहायता कर कि हम तेरे योग्य बालक बन सकें।

२९. तुम्हारा जीवन दिव्य सत्य के लिए सतत खोज हो, तब वह जीने-योग्य होगा।

३०. मधुर माँ, वर दे कि हम सरल रूप से अब और हमेशा के लिए तेरे नन्हें बालक बने रहें।

३१. प्रभो, सौन्दर्य और सामञ्जस्य के देव,

वर दे कि हम संसार में तेरी परम सुन्दरता को अभिव्यक्त करने-योग्य यन्त्र बन सकें।

यही हमारी प्रार्थना और हमारी अभीप्सा है।

अधन्ना

"पिताजी, कुछ मिठाई दो"। वे किसी आवश्यक काम में लगे थे और संयोग से उस दिन मिठाई की हँडिया खाली थी। बोले—"काम करके अभी बाजार जाऊँगा और तेरे लिए बढ़िया मिठाई ला दूँगा।"

मिठाई के लिए उनका वादा कभी झूठा न होता था, पर मैं अड़ गया, "नहीं, मैं तो अभी लूँगा मिठाई।" पर उस समय उठ सकना उनके लिए शायद सम्भव न था। एक अधन्ना मुझे देकर बोले—"ले, तिलबुग्गा लेकर खा ले।" अधन्ने का सिक्का अब नहीं चलता। तब वह दो पैसे का सिक्का था और रुपये जैसा ही उसका आकार था।

अधन्ना हाथ में लिये मैं हलवाई की दुकान पर गया। उसने अधन्ने को रुपया समझ लिया और दो पैसे का तिलबुग्गा तो मुझे दिया ही, साढ़े पन्द्रह आने और भी थमा दिये।

बाएँ हाथ में तिलबुग्गे की पुड़िया, दाएँ हाथ में साढ़े पन्द्रह आने, पैरों में झपट और तन-मन खुशी से भरपूर। आते ही पैसे पिताजी को दिये और पूरी कहानी उन्हें सुनायी। आज भी याद है, साढ़े पन्द्रह आने देख कर पिताजी सन्न हो गये थे और बहुत देर तक वे एक शब्द भी बोल न सके थे। वे सोच रहे थे, मेरे घर में ऐसा बेईमान बेटा कैसे जन्मा? उन्होंने मेरी ओर देखा और कोई आधा घण्टा वे मुझसे बातें करते रहे। तब मैंने कहा —"पिताजी, लाओ, ये हलवाई के पैसे वापस कर आऊँ" और पिताजी ने साढ़े पन्द्रह आने मेरे हाथ में थमा दिये। पैसे मुट्ठी में दबाये मैं दौड़ा-दौड़ा हलवाई की दुकान पर जा पहुँचा। "लो जी, अपने ये साढ़े पन्द्रह आने" मैंने लाला मंगलराम से कहा। वे बोले—"कैसे साढ़े पन्द्रह आने भाई?"

"मैंने अधन्ना दिया था, पर आपने उसे रुपया समझा और तिलबुग्गे के साथ साढ़े पन्द्रह आने भी दे दिये! मेरे पिताजी ने मुझे बताया कि इसे लेना बेईमानी है।" हलवाई ने साढ़े पन्द्रह आने ले लिये और कोई एक आने का तिलबुग्गा मुझे देते हुए कहा—"लो बेटा, तुम बहुत अच्छे हो।" मेरे अन्तःकरण से पिताजी के जलाये दीपक की रोशनी मेरे शब्दों में मानों छलक पड़ी—"यह तो मैं पिताजी के कहने से आपके पैसे वापस करने आया हूँ। अगर मैं पहले ही उन्हें खुद वापस कर देता तो ईनाम का

हकदार होता।"

मैं लौट पड़ा, पर मेरे पैर जमीन पर नहीं पड़ रहे थे। मेरे तिलबुग्गा न लेने की बात पर पिताजी भावविभोर हो गये। गोद में लेकर बोले—"बेटा, हम गरीब हैं, गरीब होना कोई पाप नहीं। पाप तो बेईमानी की कमाई में है। दूसरे के पैसे पर कभी निगाह मत रखना।"

सच कहूँ, दूसरे के क्या, पैसे से ही मेरी निगाह हट गयी और जब भी लक्ष्मी ने मुझे पुकारा, वह जब भी मेरे द्वार आयी, यह अधन्ना आकर हमारे बीच ऐसे खड़ा हो जाता कि मैं उस महामाया को देख ही न पाऊँ।

'मैत्री' से साभार —कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'

मेरी ज़िन्दगी महक उठी

मैं हूँ मिलड्रेड हॉडॉर्फ़, प्राथमिक विद्यालय में संगीत का अध्यापक।

तीस सालों से मैं बच्चों को पिआनो सिखा रहा हूँ। मेरे हाथ से कई होनहार बच्चे गुजरे, जिन्होंने आगे चल कर संगीत में खूब नाम कमाया, लेकिन मैं हमेशा सपने देखा करता था कि कोई ऐसा *'एकमेवाद्वितीयम्'* विद्यार्थी मेरी झोली में प्रभु डाल दें जिससे मेरा भी नाम रौशन हो जाये!

प्रभु ने कुछ किया भी ऐसा ही, सचमुच किया क्या?... उन्होंने किया यह कि मेरे पल्ले एक ऐसा विद्यार्थी बाँध दिया जिसे संगीत का ककहरा सिखाना भी मेरे लिए एक पहेली बन रहा था।

वह था ११ साल का रॉबी जिसे पहले रोज उसकी माँ पिआनो की कक्षा में छोड़ने आयीं। मेरे हिसाब से पिआनो सीखना शुरू करने के लिए उसकी उम्र निकल चुकी थी; जब मैंने इस बात की भनक उसके कान में डाली तो वह बोल उठा, "सर, हमेशा से मेरी माँ का यही सपना था कि वे मुझे पिआनो बजाते सुनें, जानता हूँ, उमर मेरी कुछ ज्यादा है, लेकिन मैं वादा करता हूँ कि जी-तोड़ मेहनत करूँगा, अपनी माँ का दिल छोटा नहीं करूँगा, नहीं करूँगा सर! आप ही मेरे मददगार बनिये कृपया।"

उसकी यह बिनती मैं टाल न सका। लेकिन उसी रोज मैं समझ गया कि रॉबी को संगीत सिखाना शायद चुनौती को चुनौती देना है! सच मानिये, मेरे अध्यापन के इतने लम्बे अरसे में मेरा वास्ता संगीत के ऐसे विद्यार्थी से

कभी नहीं पड़ा जिसके लिए संगीत की दुनिया में पहला कदम रखना भी पहाड़ लाँघने जैसा था। ईश्वर ने उसके हाथों में न लय का दामन थमाया था न ताल का, इसलिए... फिर भी, रोज, बिला नागा उसकी माँ उसे विद्यालय के फाटक तक पुरानी, खटारा गाड़ी में छोड़ जातीं।

रॉबी पिआनो पर रोज वही समान, सरल संगीत का अभ्यास करने लगा। उसके साथ आये दूसरे बच्चे तो आगे बढ़ गये, लेकिन यह पूरे-पूरे पन्द्रह दिन उसी में लगा रहा, हर पखवाड़े अपने छात्रों की एक छोटी-सी परीक्षा लेने का मेरा नियम है। कहना न होगा कि एक के सिवाय सभी उत्तीर्ण हो गये। मेरे माथे की सिलवटें उसने फौरन पढ़ लीं; कुछ मायूस, लेकिन बड़े विश्वास के साथ वह मुझसे बोला, "सर! मेरी माँ कभी मेरा पिआनो जरूर सुनेंगी।" मैं उसकी बात पकड़ न पाया, लेकिन उसकी उस उमंग ने मेरे दिल पर हाथ रख दिया और मैंने भी ठान लिया कि इस बच्चे को मैं कुछ सिखा कर ही छोड़ूँगा...।

क्या इतना सरल था रॉबी को कुछ भी सिखाना?? एक रोज मैंने उसकी माँ से बात करने की भी सोची, लेकिन न जाने क्यों, हिम्मत ही न जुटा पाया। बेटे के साथ वे कभी कक्षा तक आयीं ही नहीं! रॉबी को छोड़ते और लेते वक्त हमेशा मैंने उन्हें गाड़ी में बैठे इन्तजार करते ही देखा। रोज मुझे वे दूर ही से देख कर मुस्कुरातीं, फिर हाथ हिला कर अपनी पुरानी-धुरानी गाड़ी आगे बढ़ा देतीं। 'इनकी माली हालत खस्ता है, फिर भी अपने बेटे को संगीतकार बनाना चाहती हैं' सोच-सोच कर मैं कभी भी बढ़ कर उनके बेटे की अयोग्यता का जिक्र उनसे न कर पाया...।

और एक दिन रॉबी ने कक्षा में आना बन्द कर दिया। एक दफ़ा मेरे मन में ख्याल आया कि फ़ोन करके पूछ लूँ, लेकिन फिर सोचा कि हो न हो, संगीत की दुनिया से उसका दूर-दूर का वास्ता नहीं है समझ कर ही रॉबी ने कक्षा छोड़ दी। दिल के किसी कोने में मैं उसके न आने से खुश भी हो रहा था—मैं अपनी अयोग्यता का झण्डा नहीं फहराना चाहता था, यानी, रॉबी को किसी लायक न बना पाना मेरी ही हार होती...।

दो महीने गुजर गये, शुरू-शुरू में कभी-कदास रॉबी को मैंने याद भी किया, लेकिन फिर वह दिमाग से एकदम उतर गया। अब मेरे छात्र अपना पहला कार्यक्रम प्रस्तुत करने को तैयार थे; मैंने हर एक के घर

पर कार्यक्रम का परचा भिजवाने की सूचना दफ़्तर में दे दी। लौटती डाक से रॉबी की चिट्ठी आयी कि वह भी कार्यक्रम का हिस्सा बनना चाहता है। मैंने उसे लिखा कि कार्यक्रम में वर्तमान छात्र ही भाग ले रहे हैं, और चूँकि वह दो महीनों से नहीं आया इसलिए वह योग्य नहीं ठहर सकता। इस बार उसका फ़ोन आया। उसकी बेबसी से मैं पसीजने लगा जब उसने बताया कि उसकी माँ बहुत बीमार थीं, और चूँकि घर पर उन दोनों के सिवाय और कोई नहीं है इसलिए वह आने से एकदम मजबूर था, साथ ही उसने कहा, "सर, यकीन मानिये, मैं रोज, हर रोज बगल के घर में जाकर पिआनो का अभ्यास करता हूँ। बड़े भले हैं वे लोग, कभी-कभी मेरी मदद भी कर दिया करते हैं, अब हाथ भी मेरे कुछ सध गये हैं।" मैं सकते में आ गया। यकायक मुँह से निकल पड़ा, "अभ्यास!..." मैं आगे कहना चाहता था कि दूसरी तरफ से रुआँसी, गिड़गिड़ाती आवाज आयी, "सर, सर! इस कार्यक्रम में मुझे बजाने की अनुमति दे दें, हाथ जोड़ता हूँ आपके। मेरा इसमें बजाना बहुत, बहुत जरूरी है।"

अब तो मैं बड़े पसोपेश में पड़ गया, फिर भी कहना चाहता था कि 'नहीं, यह मुमकिन नहीं होगा रॉबी, अगली बार हम कोशिश कर सकते हैं' की बजाय न जाने कैसे मैंने अपने-आपको कहते सुना, 'ठीक है, कोशिश कर सकते हैं।' दूसरी तरफ से आती हुई 'शुक्रिया-शुक्रिया' की बौछार से मैं जगा!

"अब क्या करूँ! क्या करूँ..." का हौआ मेरे पीछे पड़ गया। मन जब जरा शान्त हुआ तो उस बच्चे के लिए दया का सोता फूट पड़ा—बेचारा, अकेली जान, माँ सख्त बीमार, तिस पर कह रहा है कि कहीं जरूर रोज अभ्यास भी करता रहा है! लेकिन... लेकिन... फिर वही दानव **लेकिन** आ खड़ा होता। आखिर मैंने यह उपाय खोज निकाला कि चूँकि वह औरों के साथ तो बजा नहीं सकता इसलिए उसे एकदम अन्त में बजाने के लिए कहूँगा, मेरे धन्यवाद-ज्ञापन के ठीक पहले, ताकि अगर वह ज्यादा बेसुरा हुआ भी तो माइक पर उसके संगीत को धीमा करवा कर मैं अपना भाषण शुरू कर दूँगा। बस यह बात मुझे पहले से ही अपने तकनीकी-दल को चुपचाप समझानी थी। मैंने रॉबी को यह सूचना भेज दी कि ज्यादा-से-ज्यादा डेढ़-दो मिनट का वह अपना एकल संगीत अन्त में बजायेगा। एक

बार फिर उसने मुझे धन्यवाद से सराबोर कर दिया। वह शाम आ गयी। विद्यालय का हॉल विद्यार्थियों, अध्यापकों, अभिभावकों, रिश्तेदारों, दोस्तों इत्यादि से खचाखच भरा था।

परदा खुलने के पहले मैंने सब छात्रों पर निगाह डाली, हमने मिल कर छोटी-सी प्रार्थना की, रॉबी कहीं न दीखा। 'चलो, खुद ही नहीं आया' की सोच ने मेरे दिल में एक साथ खुशी और गम की रेखाएँ खींच दीं।

छात्रों के सम्मिलित संगीत के खत्म होते न होते स्टेज पर चढ़ता हुआ मुझे रॉबी दिखायी दिया... हे भगवान्! कैसा हुलिया बना कर आया है यह बच्चा? मुसे-तुसे कपड़े, बिखरे हुए बाल, चेहरे पर हवाइयाँ उड़ रही हैं। एकबारगी मुझे उस पर गुस्सा आया, लेकिन वह तो स्टेज पर आ चुका था। मैंने उसे घूरा जरूर, बदले में उसने चुपचाप झुक कर मेरा अभिवादन किया, जनता का अभिवादन किया। और माइक देने के लिए मेरी तरफ हाथ बढ़ाया। जब रॉबी ने यह घोषणा की कि वह *मोज़ार* का Concerto # 21 C Major में बजायेगा तो सच कहूँ, मेरे तो रोंगटे खड़े हो गये। संगीत की दुनिया से कुछ कम परिचित लोगों के लिए यह समझना काफी है कि अच्छे-अच्छे पिआनोवादक भी संगीत-गोष्ठी में इसे बजाने से बेहद कतरायेंगे... और यह बित्ती-भर का बच्चा यह कैसी घोषणा कर बैठा? अब क्या किया जा सकता था भला? एकदम कुछ नहीं...

इसके बाद मैंने जो सुना उसे सुनने के लिए मेरे कान बिलकुल तैयार **नहीं** थे। पिआनो पर फिसलती हुई उसकी उँगलियाँ, मानों बादलों पर थिरकती कोई अप्सरा हो, गिरजाघर में बजती घण्टियों की पवित्रता हो; उसका वह मद्धम से सप्तक तक चढ़ना और फिर उतरना... मैंने अपनी इतनी लम्बी जिन्दगी में इस उम्र के बच्चे को *मोज़ार* के संगीत को इस खूबी से बजाते कभी, कभी न सुना था।

साढ़े छह मिनट के बाद वे जादुई हाथ थमे। तालियों की गड़गड़ाहट भी शायद उतनी ही देर गूँजती रही। हॉल का हर एक व्यक्ति उसके सम्मान में खड़ा, झुक कर बार-बार उसका अभिवादन कर रहा था।

अपने आँसुओं की परवाह किये बिना मैं स्टेज पर भागा, रॉबी को अपनी छाती में भींच कर, आँसुओं का गुबार कम होने तक चिपकाये ही रहा। बड़ी मुश्किल से मैं बोल पाया, "रॉबी, मेरे बच्चे, कैसे किया तुमने

यह जादू?"

माइक पर उसकी आवाज गूँजी—"सर, याद है, मैंने आपसे कहा था कि मेरी माँ सख्त बीमार हैं? सचमुच उन्हें कैंसर था और आज सवेरे उनका देहान्त हो गया"... पल-भर के लिए वह रुका, सारी जिन्दगी थम गयी... मेरी तरफ मुँह उठा कर वह फिर बोला, "...जन्म से ही वे बहरी थीं सर, तो आज की रात पहली बार उन्होंने मुझे बजाते हुए सुना, भगवान् के पास पहुँच कर तो सभी बीमारियाँ खतम हो जाती हैं न सर!..."

अवाक् कर देने वाली उसकी इस मासूम सच्चाई ने सारे हॉल में सूईटपक सन्नाटा बिछा दिया। एक जोड़ी आँखें भी रीती न रहीं। मेरी बाँहें उसे अपने में भरने के लिए फिर से लपकीं। इस बार उसने खुद को मेरी भुजाओं में पूरी तरह से समर्पित कर दिया। उस समर्पण की आत्मीयता से सराबोर मैंने अपने-आपसे पूछा, "किसने किसको प्रतिभाशाली बना दिया? आज यह मेरा खोया हुआ विद्यार्थी मेरे सामने खड़ा है या मेरे नूतन गुरुदेव?"

दूर-पास का रॉबी का न कोई सगा था, न हितचिन्तक। उसकी माँ ने वसीयत में अपनी सारी गाढ़ी कमाई एक सामाजिक संस्था के नाम कर दी थी, साथ ही उस संस्था के नाम बिनती-भरी एक चिट्ठी छोड़ गयी थीं कि रॉबी के बालिग होने तक कृपया वे ही उसकी देख-रेख कर लें।

उस सामाजिक संस्था से रॉबी को हमेशा के लिए गोद ले लिया मैंने। आज तक अपने परम सौभाग्य को सराहता हुआ, सुबह-शाम मैं अपने प्रभु को धन्यवाद देना कभी नहीं भूलता जिन्होंने अपनी परम कृपा के एक सुखद झोंके से मेरी सारी ज़िन्दगी को महका दिया।

—वन्दना

नयी शक्ति

डूबते हुए सूरज से एक व्यक्ति प्रार्थना कर रहा था–"भगवन्! हमें शक्ति दो ताकि हम संसार की कुछ सेवा कर सकें।" पास से एक यात्री गुज़र रहा था, हँसते हुए बोला–"भाई! सूर्य तो स्वयं ही डूब रहा है, आप उससे शक्ति माँगते हैं?" भक्त ने उत्तर दिया–"डूब नहीं रहा मित्र, नयी शक्ति लेकर लौटने की तैयारी कर रहा है।"

—अज्ञात

पुस्तक-परिचय

श्रीअरविन्द—सुमित्रानन्दन पन्त, सम्पादक—सुरेशचन्द्र त्यागी।

'अदिति' पत्रिका के सफल सम्पादक श्री त्यागी जी से हम सब परिचित हैं। उन्हीं के सम्पादन में हिन्दी के वरिष्ठ कवि सुमित्रानन्दन जी की कई कविताओं का सुन्दर संकलन है। एक बार श्रीअरविन्द के काव्य से परिचित हो जाने के बाद पन्त जी उसी में लौलीन हो गये—उनकी चिन्तन-धारा के साथ-साथ उनकी काव्य-धारा भी पूरी तरह से बदल गयी। आश्रम में भी आकर उन्होंने कई महीनों तक वास किया। श्रीमाँ तथा श्रीअरविन्द पर कई काव्य-रचनाएँ कीं।

प्रस्तुत पुस्तक तीन भागों में विभक्त है। श्रीअरविन्द के प्रति पन्त जी का अर्घ्य-काव्य, उनके बारे में लेख तथा अन्त में उनकी कविताओं का अनुवाद। सबसे अच्छी बात यह है कि त्यागी जी ने मूल के साथ-साथ पन्त जी का अनुवाद दिया है। पाठकों के लिए यह बहुत ही रुचिकर होगा।

'अतुलनीय विभूति' नामक लेख का एक अंश हम यहाँ उद्धृत कर रहे हैं :

"श्रीअरविन्द को मैं इस युग की अत्यन्त महान् तथा अतुलनीय विभूति मानता हूँ। उनके जीवन-दर्शन से मुझे पूर्ण सन्तोष प्राप्त हुआ। उनसे अधिक व्यापक, ऊर्ध्व तथा अतलस्पर्शी व्यक्तित्व, जिनके जीवन-दर्शन में अध्यात्म का सूक्ष्म, बुद्धि-अग्राह्य-सत्य नवीन ऐश्वर्य तथा महिमा से मण्डित हो उठा है, मुझे दूसरा कहीं देखने को नहीं मिला। विश्व-कल्याण के लिए मैं श्रीअरविन्द की देन को इतिहास की सबसे बड़ी देन मानता हूँ। उसके सामने इस युग के वैज्ञानिकों की अणु-शक्ति की देन भी अत्यन्त तुच्छ है। उनके दान के बिना शायद भूत-विज्ञान का बड़े-से-बड़ा दान भी जीवन-मृत मानवजाति के भविष्य के लिए आत्म-पराजय तथा अशान्ति का ही वाहक बन जाता। मैं नहीं कह सकता कि संसार के मनीषी तथा लोक-नायक श्रीअरविन्द की इस विशाल आध्यात्मिक जीवन-दृष्टि का उपयोग किस प्रकार करेंगे अथवा भगवान् उसके लिए कब क्षेत्र बनायेंगे।

"यह मेरे कवि-हृदय की विनीत अपर्याप्त श्रद्धाञ्जलि-मात्र है। ये थोड़े से शब्द मैं इसलिए लिख रहा हूँ कि हमारे तरुण बुद्धिजीवी श्रीअरविन्द

के जीवन-दर्शन से भारत की आत्मा का परिचय तथा मानव और विश्व के अन्तर-विधान का अधिक परिपूर्ण ज्ञान प्राप्त कर, लाभान्वित हो सकें। आज हम छोटी-छोटी बातों के लिए पश्चिम के विचारकों का मुँह जोहते हैं, उनके वाक्य हमारे लिए ब्रह्मवाक्य बन जाते हैं और हम अपनी इतनी महान् विभूति को पहचान भी नहीं सके हैं, जिनके हिमालय-तुल्य मनःशिखर के सामने इस युग के अन्य विचारक विन्ध्य की चोटियों के बराबर भी नहीं ठहरते। इसका कारण यही हो सकता है कि हमारी राजनीतिक पराधीनता की बेड़ियाँ तो किसी प्रकार कट गयीं, किन्तु मानसिक दासता की शृंखलाएँ अभी नहीं टूटी हैं।"

पुस्तक बहुत उपयोगी है। त्यागी जी के लिए साधुवाद। बस, जो चीज खटकती है वह है, मुद्रण की भूलें!!

अनुभूति—लेखक धीरेन्द्र सिंह गंगवार, मूल्य २००रु.

सम्पर्क-सूत्र—दूरभाष संख्या—९३१९३५२४६१

धीरेन्द्र सिंह जी की कविताओं के इस संकलन में कविताओं के साथ चित्र भी हैं जो इसकी शोभा बढ़ा देते हैं। उन्हीं के शब्दों में :

"यह काव्य-संकलन, प्रगतिशील जीवन की राह की खोज में आगे बढ़ने का एक छोटा-सा प्रयत्न है। इस संकलन की अधिकांश कविताएँ, सामाजिक समस्याओं की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करती हैं। निराशा के अन्धकार से लड़ने के लिए, चेतना की यह छोटी-सी दीपशिखा, यदि कुछ व्यक्तियों को भी प्रेरित करने में सफल होती है, तो यह प्रयास सार्थक और सफल माना जायेगा।"

उनके कार्य की एक बानगी देखिये :

संगठित रहो, शिक्षित बनो, मानव तुम संघर्ष करो।
मन के बन्धन तोड़ो सारे, व्यसनों से अब घृणा करो।।
जीवन-पथ के सहयात्री हो, मान को तुम अब प्राप्त करो।
सामर्थ्य तुम्हारा बढ़े सदा ही, हर पल, वो सब जतन करो।।...

पुस्तक सुन्दर बन पड़ी है।

Statement About Ownership And Other Particulars Concerning Agnishikha
Form IV

(1) *Place of Publication*:	Sri Aurobindo Ashram Puducherry - 605002
(2) *Periodicity of its publication:*	Monthly
(3) *Printer's Name:* *Nationality :* *Address:*	Swadhin Chatterjee Indian Sri Aurobindo Ashram Press, Puducherry - 605002
(4) *Publisher's Name:* *Nationality:* *Address:*	Pradeep Narang, Indian Sri Aurobindo Society, 11, Saint Martin Street, Puducherry - 605001
(5) *Editor's Name:* *Nationality :* *Address :*	Vandana Indian Sri Aurobindo Ashram Puducherry - 605002
(6) *Names and addresses of individuals who own the newspaper and partners or shareholders holding more than one per cent of the total capital:*	Sri Aurobindo Society, 11, Saint Martin Street, Puducherry - 605001.

I, Pradeep Narang, hereby declare that the particulars given above are true to the best of my knowledge and belief.

1st March 2017

Sd/- (Pradeep Narang)
Chairman

उनकी कृपा का स्पर्श कठिनाई को सुयोग में, विफलता को सफलता में और दुर्बलता को अविचल बल में परिणत कर देता है। भगवती माँ की कृपा परमेश्वर की अनुमति है, आज हो या कल, उसका फल निश्चित है, पूर्वनिर्दिष्ट अवश्यंभावी और अनिवार्य है ।

– श्रीअरविन्द

अमरनाथ शिक्षण संस्थान, मथुरा (उ.प्र.)

फोन– 0565–3240006, 9358340375

Website : anvaschool.org, Email-amarnath.mtr1@rediffmail.com

Date of Publication: 1st March 2017
Rs. 15.00 (Monthly) Registered: SSP/PY/47/2015-2017
RNI No.18135/70 WPP No.TN/PMG/(CCR)/WPP-472/15-17

A school by The Vatika Group vatika

Holistic

"MatriKiran believes in holistic development and Yoga, Clay Modelling, Indian Music and Ballet are part of its curriculum. The need for extra classes does not arise at all."

Upasana Mahtani Luthra

Nature Friendly

"Being a doctor myself, it was very important for me that the school environment should be healthy. Class rooms in MatriKiran are nature friendly, spacious, well ventilated and they open out to green spaces., in communion with nature."

Dr Nidhi Gupta

ADMISSIONS OPEN
Academic Year 2016-17

MatriKiran

Junior School SOHNA ROAD
Pre Nursery to Grade 5

Senior School VATIKA INDIA NEXT
Grade 6 to Grade 8

www.matrikiran.in | +91-124-4938200, +91-9650690222
Junior School: W Block, Sec. 49, Sohna Rd, Gurgaon • **Senior School**: Sec. 83, Vatika India Next, Gurgaon